जायसी

परमानंद श्रीवास्तव

H
811.24
J 334 S

भारतीय
साहित्य के

H
811.24
J334S

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरुप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया — के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। नीचे बैठा लिपिक इसे लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.।
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली।

भारतीय साहित्य के निर्माता

जायसी

परमानंद श्रीवास्तव

साहित्य अकादेमी

Jayasi : A monograph by Parmanand Srivastava on the Hindi author, Sahitya Akademi, New Delhi, (1996) Rs. 15.

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1981
द्वितीय संस्करण : 1990
तृतीय संस्करण : 1993
चतुर्थ संस्करण : 1996

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मंदिर मार्ग, नयी दिल्ली

Library IIAS, Shimla
H 811.24 J 334 S
00094866

क्षेत्रीय कार्यालय
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23ए/44 एक्स.
डायमंड हार्बर रोड, **कलकत्ता 700 053**
304 & 305 अन्ना सालई, तेनामपेट, **मद्रास 600 018**
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग,
दादर, **बम्बई 400 014**
ए.डी.ए. रंगमंदिर, जे.सी. मार्ग, **बंगलौर 560 002**

H
811.24
J334S

मूल्य : पन्द्रह रुपये
ISBN-81-7201-401-5

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc No. 94866
Date 13/3/2000

मुद्रक :
कम्प्यूडाटा सर्विसेज, नई दिल्ली - 110 014

अनुक्रम

१. समय	७
२. जीवन, व्यक्तित्व और रचनाएँ	१०
३. 'पदमावत' की कहानी : कंहानी का अर्थ	१५
४. प्रबन्ध के ढाँचे में मार्मिक कविता	२७
५. प्रेम-दर्शन	३१
६. सौन्दर्य-दर्शन	३६
७. लोक-संस्कृति और लौकिकता का अतिक्रमण	४
८. लोक-भाषा में सम्भव होने वाली कविता	४४
९. अन्य रचनाएँ : दार्शनिक विचारों की अटपटी कविता	५०
१०. जायसी का मूल्यांकन	५७
परिशिष्ट : क : कविता का प्रामाणिक पाठ	६१
: ख : संदर्भ-सूची	६७

१

समय

मलिक मुहम्मद जायसी एक ऐसे समय में हुए जो भारतीय जीवन में धार्मिक संघर्ष को सांस्कृतिक समन्वय में बदलने वाला समय है। जिसे साहित्य के इतिहास में 'भक्तियुग' कहा गया है, वह संस्कृति के इतिहास में नये जागरण का युग है। यही समय है जब धार्मिक विश्वासों की रूढ़ टकराहट से ऊबकर विभिन्न जातियों और विचारों के कवियों ने भक्ति के एक सामान्य मार्ग को खोजने के बहाने मनुष्य की एकता की खोज की। इसी समय हिन्दू-मुस्लिम सभ्यताएँ सांस्कृतिक व्यवहार और जीवन (स्थापत्य, संगीत, चित्रकला, साहित्य) के क्षेत्र में एक-दूसरे पर असर डालने लगी थीं—वे एक-दूसरे के निकट आ रही थीं। जायसी (१४६४-१५४२) के पाठकों को यह बात महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प लगेगी कि जायसी उस साहित्य-धारा (प्रेमगाथा परम्परा) से सम्बद्ध कवि हैं जिसके सभी रचनाकार उदार स्वभाव के मुसलमान हैं, सभी ऐसी प्रेमकहानियाँ चुनते हैं, जो हिन्दू घरों में प्रचलित हिन्दू जीवन और परिवेश की प्रेम कहानियाँ हैं और सभी उस अवधी में काव्यरचना करते हैं जो एक लोकभाषा है। इस तरह का सांस्कृतिक समन्वय किसी समय में अचानक नहीं हो सकता। जायसी से बहुत पहले पहेलियों और प्रेमप्रधान लोकगीतों के लिए प्रसिद्ध अमीर खुसरो हो चुके थे। प्रेमकाव्य की परम्परा में मुल्लादाऊद 'चंदायन' नामक काव्य लिख चुके थे। धार्मिक टकराहटें इस बीच हो रही थीं पर वही मनुष्य की एकता वाला विचार साहित्य, कला और संस्कृति में अपनी जड़ें भी मजबूत कर रहा था।

यहाँ जायसी की परम्परा के बारे में यह उल्लेख जरूरी है कि वह सूफ़ी विचारों से प्रभावित है। सूफी सन्त अपनी उदारता, मनुष्य मात्र के प्रति गहरी सहानुभूति, उच्च कोटि की प्रेमभावना के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। हृदय की शुद्धता, सरलता ही उन्हें उदार धार्मिक जीवन की ओर ले गई थी और उसीने उन्हें मानवीय प्रेम की गहराई का अनुभव कराया था। यह बारहवीं शताब्दी के अन्त का समय था जब सूफी भारत में आने लगे थे। ११९० ई० में प्रसिद्ध सूफी सन्त

ख्वाजा मोयिनुद्दीन चिश्ती यहाँ आये—जिन्होंने इस्लाम की धार्मिक संकीर्णता के विरुद्ध उदार प्रेम को प्रतिष्ठा दी। सूफ़ी एक सरल नैतिक जीवन को भक्ति के लिए पर्याप्त समझते थे। भक्ति के नाम पर कोई आडम्बर इनके विश्वासों के बीच नहीं आता था। हुआ यह कि यहाँ आने के बाद सूफ़ी विचारधारा का सम्पर्क हिन्दू धर्म से हुआ और हिन्दू धर्म के सम्पर्क ने उसमें एक सर्वथा नए तत्व को जन्म दिया। जायसी जैसे कवियों के यहाँ इन दो प्रकार के धार्मिक विचारों का फ़र्क लगभग मिट गया है। एक तो इनके महत्त्वपूर्ण काव्यों में जो प्रेमकहानियाँ हैं, हिन्दू परिवेश या ढाँचे की हैं। इसके बाहर भी ये कवि इस फ़र्क़ को मिटाते हैं।

सामाजिक एकता के लिए प्रसिद्ध कबीर भी उसी समय-प्रवाह के कवि हैं, जिससे जायसी का सम्बन्ध है। पर दोनों के सोचने के ढंग में एक अन्तर है। कबीर हिन्दू मत और इस्लाम मत दोनों की संकीर्णता पर चोट करते हैं, उनके प्रतिनिधियों को फटकारते हैं और अपने नये सोचे हुए, खोजे हुए रास्ते पर चल पड़ते हैं। जायसी के यहाँ एक धक्के से सब कुछ टूट नहीं जाता। वे अपने इस्लाम में आस्थावान बने रहते हैं पर फ़ारसी से इस्लाम के सम्बन्ध को तोड़ कर अभिव्यक्ति के लिए वही अवधी जैसी ठेठ लोकभाषा का चुनाव करते हैं जिसका उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि ईरान के सूफ़ियों ने इस्लाम की सीमा में ही प्रेम का अर्थ जाना था। जायसी के समय तक भारतीय धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन में यह एक बड़ी बात हुई कि हिन्दू धर्म और कथा-परिवेश में सूफ़ी-प्रेम की झलक दिखाई देने लगी। यह साधारण घटना नहीं थी।

जायसी के समय का भक्ति आन्दोलन एक ओर भक्ति की अलग-अलग धाराओं को एक-दूसरे के निकट लाता है, दूसरी ओर एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप लेता है। इस दृश्य को समझने के लिए कुछ पहले से भारतीय जीवन के धार्मिक-सांस्कृतिक रूपों को देखना चाहिए। भक्ति-चेतना की लहर दक्षिण से शुरू हुई थी। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि दक्षिण के राजनीतिक जीवन में उतनी अशान्ति या हलचल नहीं थी जितनी उत्तर के जीवन में लगातार बनी हुई थी। तेरहवीं शताब्दी तक इस्लामी आक्रमण प्रायः उत्तर भारत में ही होते रहे। चौदहवीं शताब्दी में जरूर दक्षिण प्रभावित हुआ। दक्षिण के हिन्दू राजाओं ने भक्ति को संरक्षण ही नहीं दिया—कलात्मक सांस्कृतिक परिवेश भी दिया। दक्षिण के मन्दिर इसके उदाहरण हैं। दक्षिण के आलवार सन्तों ने वैष्णव भक्ति के प्रचार-प्रसार में योग दिया। भाषा के अन्तर को भक्ति की हार्दिकता ने सहज ही भर दिया। सामान्य जन को यहीं से भक्ति में एक नई स्वीकृति मिलने लगी। जाति-धर्म के ऊपरी बन्धन मिट-से गये। रामानुज से रामानन्द तक की कोशिशों का नतीजा है कि वैष्णव भक्ति ने उदार धार्मिकता को एक बड़े जन-मानस का संस्कार बना दिया। शंकराचार्य के दार्शनिक विचारों ने ईश्वर और

जीवन के अभेद पर बल देते हुए कुछ ऐसा भी किया था कि आधुनिक विचारक उन्हें आध्यात्मिक सुधारवादी कहते हैं। निर्गुण सन्तों के विचारों में उनकी चिन्तन पद्धति की छाप है पर सन्तकवियों ने आगे जाकर मनुष्य की एकता जैसे विचार को पुष्ट किया। इस विचार को नया संस्कार मिला—उन्हीं सूफ़ी विचारों से, जिनमें प्रेम ही ईश्वर का पर्याय हो गया था। अब जायसी के पाठक इस दृश्य को देख सकते हैं कि एक ओर भक्ति की यह सगुण व्याख्या भी थी कि ईश्वर अवतार कल्पना में ढल कर हमें मानवीय सम्बन्धों के बीच अपनी पहचान करा सकता है। राम और कृष्ण की सगुण उपासना से लाभ उठाकर तुलसी सूर जैसे कालजयी कवियों ने 'रामचरित मानस' और 'सूरसागर' जैसे मार्मिक काव्यों की रचना की। उधर कबीर ने ज्ञान से ईश्वर की सत्ता को सूक्ष्म तत्व के रूप में देखा पर सामाजिक प्रश्नों से अपनी कविता को अलग नहीं किया। जायसी हैं तो उसी निर्गुण मार्ग के कवि, पर प्रेम चेतना और प्रेम कहानी की माँग से पद्मावती को ईश्वर का संकेत बना देते हैं—पद्मावती की सुन्दरता साधारण की सीमा लाँघ जाती है—सारा संसार, समूची प्रकृति उसी रूप से बिंधी हुई जान पड़ती है। निर्गुण कल्पना में से रूप ही नहीं, चरित्र उभरने लगता है। यह वह सौन्दर्य-मूर्ति है, जो अपने स्पर्श से सबको सुन्दर बनाने में समर्थ है :

बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा । भइ तहँ ओप जहाँ जो देखा ॥
पावन रूप, रूप जस चहा । ससिमुख जनु दरपन होइ रहा ॥

जायसी के पाठक इस समय को देखें—जहाँ दार्शनिकता बोझ नहीं है—अनुभव का आनन्द है—कविता का सुख है। धार्मिक आस्था और धर्मनिरपेक्षता का जो रिश्ता भक्तियुग में निर्मित हुआ उसे केन्द्र में रखने की आवश्यकता है। तभी इस काव्य-समय की सच्ची पहचान हो सकती है।

यह अवश्य है कि आधुनिक कवि के काव्य में समय और समाज का जैसा साक्ष्य मिल सकता है, जायसी जैसे मध्यकालीन सूफ़ी सन्त कवि के काव्य में नहीं मिलता। वह संभव भी नहीं है। जायसी कुछ संकेत अपने व्यक्तित्व और समय के बारे में दे दें पर कहानी तो उन्हें पद्मावती, नागमती और रत्नसेन की कहानी है—अपनी नहीं। पर यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि जायसी का काव्य समय के परे है—उनके काव्य का प्रेमरसायन समय की ही माँग है।

ख्वाजा मोयिनुद्दीन चिश्ती यहाँ आये—जिन्होंने इस्लाम की धार्मिक संकीर्णता के विरुद्ध उदार प्रेम को प्रतिष्ठा दी। सूफ़ी एक सरल नैतिक जीवन को भक्ति के लिए पर्याप्त समझते थे। भक्ति के नाम पर कोई आडम्बर इनके विश्वासों के बीच नहीं आता था। हुआ यह कि यहाँ आने के बाद सूफ़ी विचारधारा का सम्पर्क हिन्दू धर्म से हुआ और हिन्दू धर्म के सम्पर्क ने उसमें एक सर्वथा नए तत्व को जन्म दिया। जायसी जैसे कवियों के यहाँ इन दो प्रकार के धार्मिक विचारों का फ़र्क लगभग मिट गया है। एक तो इनके महत्त्वपूर्ण काव्यों में जो प्रेमकहानियाँ हैं, हिन्दू परिवेश या ढाँचे की हैं। इसके बाहर भी ये कवि इस फ़र्क़ को मिटाते हैं।

सामाजिक एकता के लिए प्रसिद्ध कबीर भी उसी समय-प्रवाह के कवि हैं, जिससे जायसी का सम्बन्ध है। पर दोनों के सोचने के ढंग में एक अन्तर है। कबीर हिन्दू मत और इस्लाम मत दोनों की संकीर्णता पर चोट करते हैं, उनके प्रतिनिधियों को फटकारते हैं और अपने नये सोचे हुए, खोजे हुए रास्ते पर चल पड़ते हैं। जायसी के यहाँ एक धक्के से सब कुछ टूट नहीं जाता। वे अपने इस्लाम में आस्थावान बने रहते हैं पर फ़ारसी से इस्लाम के सम्बन्ध को तोड़ कर अभिव्यक्ति के लिए वही अवधी जैसी ठेठ लोकभाषा का चुनाव करते हैं जिसका उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि ईरान के सूफ़ियों ने इस्लाम की सीमा में ही प्रेम का अर्थ जाना था। जायसी के समय तक भारतीय धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन में यह एक बड़ी बात हुई कि हिन्दू धर्म और कथा-परिवेश में सूफ़ी-प्रेम की झलक दिखाई देने लगी। यह साधारण घटना नहीं थी।

जायसी के समय का भक्ति आन्दोलन एक ओर भक्ति की अलग-अलग धाराओं को एक-दूसरे के निकट लाता है, दूसरी ओर एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप लेता है। इस दृश्य को समझने के लिए कुछ पहले से भारतीय जीवन के धार्मिक-सांस्कृतिक रूपों को देखना चाहिए। भक्ति-चेतना की लहर दक्षिण से शुरू हुई थी। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि दक्षिण के राजनीतिक जीवन में उतनी अशान्ति या हलचल नहीं थी जितनी उत्तर के जीवन में लगातार बनी हुई थी। तेरहवीं शताब्दी तक इस्लामी आक्रमण प्रायः उत्तर भारत में ही होते रहे। चौदहवीं शताब्दी में जरूर दक्षिण प्रभावित हुआ। दक्षिण के हिन्दू राजाओं ने भक्ति को संरक्षण ही नहीं दिया—कलात्मक सांस्कृतिक परिवेश भी दिया। दक्षिण के मन्दिर इसके उदाहरण हैं। दक्षिण के आलवार सन्तों ने वैष्णव भक्ति के प्रचार-प्रसार में योग दिया। भाषा के अन्तर को भक्ति की हार्दिकता ने सहज ही भर दिया। सामान्य जन को यहीं से भक्ति में एक नई स्वीकृति मिलने लगी। जाति-धर्म के ऊपरी बन्धन मिट-से गये। रामानुज से रामानन्द तक की कोशिशों का नतीजा है कि वैष्णव भक्ति ने उदार धार्मिकता को एक बड़े जन-मानस का संस्कार बना दिया। शंकराचार्य के दार्शनिक विचारों ने ईश्वर और

जीवन के अभेद पर बल देते हुए कुछ ऐसा भी किया था कि आधुनिक विचारक उन्हें आध्यात्मिक सुधारवादी कहते हैं। निर्गुण सन्तों के विचारों में उनकी चिन्तन पद्धति की छाप है पर सन्तकवियों ने आगे जाकर मनुष्य की एकता जैसे विचार को पुष्ट किया। इस विचार को नया संस्कार मिला—उन्हीं सूफ़ी विचारों से, जिनमें प्रेम ही ईश्वर का पर्याय हो गया था। अब जायसी के पाठक इस दृश्य को देख सकते हैं कि एक ओर भक्ति की यह सगुण व्याख्या भी थी कि ईश्वर अवतार कल्पना में ढल कर हमें मानवीय सम्बन्धों के बीच अपनी पहचान करा सकता है। राम और कृष्ण की सगुण उपासना से लाभ उठाकर तुलसी सूर जैसे कालजयी कवियों ने 'रामचरित मानस' और 'सूरसागर' जैसे मार्मिक काव्यों की रचना की। उधर कबीर ने ज्ञान से ईश्वर की सत्ता को सूक्ष्म तत्व के रूप में देखा पर सामाजिक प्रश्नों से अपनी कविता को अलग नहीं किया। जायसी हैं तो उसी निर्गुण मार्ग के कवि, पर प्रेम चेतना और प्रेम कहानी की माँग से पद्मावती को ईश्वर का संकेत बना देते हैं—पद्मावती की सुन्दरता साधारण की सीमा लाँघ जाती है—सारा संसार, समूची प्रकृति उसी रूप से बिंधी हुई जान पड़ती है। निर्गुण कल्पना में से रूप ही नहीं, चरित्र उभरने लगता है। यह वह सौन्दर्य-मूर्ति है, जो अपने स्पर्श से सबको सुन्दर बनाने में समर्थ है :

बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा । भइ तहँ ओप जहाँ जो देखा ॥
पावन रूप, रूप जस चहा । ससिमुख जनु दरपन होइ रहा ॥

जायसी के पाठक इस समय को देखें—जहाँ दार्शनिकता बोझ नहीं है—अनुभव का आनन्द है—कविता का सुख है। धार्मिक आस्था और धर्मनिरपेक्षता का जो रिश्ता भक्तियुग में निर्मित हुआ उसे केन्द्र में रखने की आवश्यकता है। तभी इस काव्य-समय की सच्ची पहचान हो सकती है।

यह अवश्य है कि आधुनिक कवि के काव्य में समय और समाज का जैसा साक्ष्य मिल सकता है, जायसी जैसे मध्यकालीन सूफ़ी सन्त कवि के काव्य में नहीं मिलता। वह संभव भी नहीं है। जायसी कुछ संकेत अपने व्यक्तित्व और समय के बारे में दे दें पर कहानी तो उन्हें पद्मावती, नागमती और रत्नसेन की कहानी है—अपनी नहीं। पर यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि जायसी का काव्य समय के परे है—उनके काव्य का प्रेमरसायन समय की ही माँग है।

२

जीवन, व्यक्तित्व और रचनाएँ

'पद्मावत' जैसे कालजयी महाकाव्य की रचना के लिए प्रसिद्ध जायसी के जीवन के बारे में जो जानकारी मिलती है, वह अपर्याप्त भी है और विवाद-ग्रस्त भी। इसलिए स्वयं उनकी कविता से जीवन के बारे में जो सूचनाएँ मिलती हैं, वे कहीं अधिक भरोसे की चीज़ हैं। मलिक मुहम्मद जायसी—इस संज्ञा में **'मलिक'** शब्द जायसी के **पूर्वजों** की याद दिलाता है, जो सम्भवतः अरब से आए थे। उत्तरप्रदेश के रायबरेली ज़िले में **जायस** नाम का कस्बा है, जहाँ निवास करने के कारण वे जायसी कहलाए। 'पद्मावत' में जायसी ने लिखा भी है—'जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।' एक अन्य कृति 'आखिरी कलाम' में जायसी की पंक्तियाँ हैं :

"जायस नगर मोर अस्थानू, नगर क नावँ आदि उदयानू।
तहाँ दिवस दस पहुने आएउँ, भा बैराग बहुत सुख पाएउँ॥"

अब इस पर बड़ी अटकलें लगाई जाती हैं कि जायसी जायस में शुरू से थे या कहीं से आकर उन्होंने इसे धर्म स्थान के रूप में चुना। 'दस दिन' वाली बात को कुछ लोग मुहावरे से अधिक महत्त्व नहीं देते। उनके अनुसार इस संसार में रहने की ही व्यंजना इस संकेत से होती है। 'पद्मावत' की रचना जायस में हुई, इतना तो निश्चित ही है। अब ऐसे प्रमाण भी मिल गये हैं, जिनके अनुसार जायस को जायसी का स्थायी निवास-स्थान तथा कार्य स्थान माना जा सकता है।* जायसी के पाठक

---

* जायस में जायसी के वंशज आज जिस खेतीबारी के काम में लगे हैं उसे वे जायसी का ही उत्तराधिकार मानते हैं। 'पदमावत' के पाठ पर महत्त्वपूर्ण कार्य में लगे हुए डॉ० भगवती प्रसाद मिश्र से यह जानकारी मिली कि जायस से तिलोई जाने वाले मार्ग पर जायसी के अपने खेत थे। किसानी का जीवन उनके अपने अनुभव का जीवन था। 'पदमावत' में कृषि सम्बन्धी शब्दावली इस अनुभव की सचाई को प्रमाणित करती है।

अपने प्रिय कवि के घर का एक खँडहर-जैसा रूप देखकर कैसा अनुभव करेंगे—कहना कठिन है। जायस के कंचाना मुहल्ले में है तो यह एक खँडहर जैसा मकान ही—जिसमें लम्बे समय की स्मृतियाँ बसी हुई हैं। मकान में बहुत कुछ नया, आगे का जोड़ा हुआ भी, स्पष्ट पहचाना जा सकता है। अब सामने की सड़क को 'मलिक मुहम्मद रोड' कहा जाता है। दरवाज़े के सामने एक पत्थर पर ये पंक्तियाँ अंकित हैं :

केई न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी हम्ह सँवरै दुइ बोल।

जायसी मलिक शेख ममरेज़ और मानिकपुर के शेख अलहदाद की पुत्री की सन्तान कहे जाते हैं। कहा जाता है कि जायसी कुरूप थे, (कुरूपता का कारण चेचक बताई जाती है)—जायसी ने स्वयं अपनी कुरूपता का उल्लेख किया है :

'एक नयन कवि मुहमद गुनी'

या

'मुहम्मद वाईं दिसि तजा, एक स्रवन, एक आँखि।'

प्रसिद्ध है कि जायसी बचपन में ही माता-पिता को खो चुके थे। साधु-फ़कीरों के सम्पर्क में कुछ समय बिता कर वे कुछ समय के लिए मानिकपुर अपने नाना के पास रहे। जायसी की अन्तर्मुखता का रहस्य उनके आरम्भिक जीवन में ही छिपा हुआ है। मृत्यु के समय जायसी अत्यन्त वृद्ध, सन्तानहीन थे। सन्तानहीनता को लेकर यह भी प्रचलित है कि उनके सात पुत्र मकान की छत गिर जाने के कारण अकाल मृत्यु के शिकार हो गये। इसके पीछे गुरु द्वारा दिए गए शाप की बात भी कही जाती है, जिनके प्रति अनजाने ही जायसी ने अनादर व्यक्त कर दिया था। अफीम के अभ्यस्त गुरु को 'पोस्तीनामा' की रचना अनादर ही प्रतीत हुई थी। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे बहुत से विश्वास केवल जनश्रुतियों पर आधारित हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि जब जायसी का पूरा परिवार खत्म हो गया, उसी गुरु ने प्रकट होकर कृतियों में अमर होने की भविष्यवाणी की।

जायसी के जन्म-समय तथा मृत्यु-समय को लेकर भी कई तरह की बातें कही जाती हैं। आधार जायसी की वही-वही पंक्तियाँ हैं, पर व्याख्या सबकी अलग-अलग है—'भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी॥' (अखराहट), 'सन नौ सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा॥' (पद्मावत) नौ सदी

से ९०० हिजरी और नवीं सदी के तर्क से ८७० हिजरी (१४६४ ई०) समय का समर्थन अलग-अलग तर्कों से किया गया है। दूसरी मान्यता सच के कुछ अधिक निकट जान पड़ती है क्योंकि पहली मान्यता के कारण रचना-समय और वास्तविक आयु से सम्बद्ध बहुत से सूत्र उलझ जाते हैं। यहाँ कुछ ऐतिहासिक तथ्य विचारणीय हो सकते हैं। जायसी के ही संकेत के अनुसार शेरशाह के दिल्ली-शासन के समय उनकी उपस्थिति मानी जा सकती है :

सेरसाहि दिल्ली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू ॥'

पद्मावत' की समाप्ति के समय जायसी की वृद्धावस्था अन्तःसाक्ष्य से ही प्रमाणित है :

'मुहमद बिरिध बएस अब भई। जोबन हुत सो अवस्था गई ॥
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनन्ह दै नीरू ॥
दसन गए कै तुचा कपोला। बैन गए दै अनरुचि बोला ॥

पद्मावत' के आरम्भ में शेरशाह को जायसी आशीर्वाद दे रहे हैं :

दीन असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज।
पातसाह तुम जग के जग तुम्हार मुहताज ॥

जायसी ही लिखते हैं कि उन्होंने पद्मावत की रचना ९२७ हिजरी में प्रारम्भ की : सन नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा ॥'—यदि ९०० हिजरी को जन्मतिथि मानें, तो यह उलझन सामने है कि २७ वर्ष में (या दूसरे पाठ के अनुसार ४७ वर्ष में) पद्मावत लिखने वाले कवि की वृद्धावस्था किस प्रकार उसी के रचनाकाल में घटित हुई। ८७० हिजरी वाले तर्क की विश्वसनीयता मृत्यु तिथि (९४९ हिजरी) के संदर्भ में कहीं अधिक जान पड़ती है। कुछ विद्वान जायसी की मृत्यु-तिथि १०४९ हिजरी मानते हैं। पर इस तरह तो मानना होगा कि जायसी को जीवन के १७९ वर्ष मिले। यह असम्भव ही है। तिथियों के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है पर अन्तःसाक्ष्य को कुछ बाह्य साक्ष्य से मिलाने पर भी जायसी का जन्म ८७० हिजरी (१४६४ ई०) और उनकी मृत्यु ९४९ हिजरी (१५४२ ई०) में मान सकते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने क़ाजी नसीरुद्दीन हुसेन जायसी के आधार पर जायसी का मृत्यु-काल ९४९ हिजरी (१५४२ ई०) स्वीकार किया है। जायसी के पाठक यही मानकर उनकी कृतियों की ओर अपना ध्यान ले जा सकते हैं कि कवि का जीवन-प्रसंग तथ्यों की दृष्टि से बहुत स्पष्ट नहीं है। प्रसिद्ध है कि जायसी की मृत्यु अमेठी में हुई। इसका आधार एक प्रचलित जनश्रुति है। अमेठी के राजाराम सिंह और जायसी में पूर्व जन्म की शत्रुता थी। जायसी का

विश्वास था कि उनकी मृत्यु वहीं होगी। उन्होंने अमेठी के राजा से बता दिया था कि उनकी मृत्यु गोली लगने से होगी। राजा की ओर से प्रतिबन्ध था कि उस क्षेत्र में गोली न चलाई जाय। जायसी ने शेर का रूप धारण किया और गर्जना की। इसी आतंक में किसी शिकारी ने उन पर गोली चला दी। इस प्रकार जायसी की मृत्यु के प्रसंग को कहानी बना दिया गया है। अमेठी में जायसी की कब्र है जहाँ हिन्दू-मुसलमान समान श्रद्धापूर्वक आते हैं—स्त्रियाँ मनौती के रूप में चादरें चढ़ाती हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायेगा कि जायसी सरीखे बड़े कवि का कोई ऐसा स्मारक नहीं बन पाया जो कवि का स्मारक जान पड़े। हम यह मान कर सन्तुष्ट हो सकते हैं कि लोक के चित्त में बसे हुए कवि का वास्तविक स्मारक उसका कृतित्व ही होता है—जो है।

जायसी जैसे सूफ़ी सन्त का एक दीक्षा-परम्परा से गुज़रना स्वाभाविक है। कुछ लोग सैयद अशरफ जहाँगीर को जायसी का गुरु मानते हैं, कुछ लोग शेख मुहीउद्दीन को। पर वास्तविकता यह है कि ये दोनों जायसी के गुरु नहीं थे। शाह मुबारक बोदले और शाह कमाल उनके गुरु कहे गए हैं। 'चित्ररेखा' की पंक्तियों का हवाला देकर कालपी वाले मुहीउद्दीन महेंदी को जायसी का गुरु कहा गया है :

महेंदी गुरु सेख बुरहानू। कालपि नगर तेहिंक अस्थानू॥
सो मोरा गुरु तिन्ह हौं चेला। धोबा पाप पानि सिर मेला॥

वासुदेव शरण अग्रवाल ने जायसी की गुरु-परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा है—"जायसी के मन में जो निर्मल भाव थे, वे अकस्मात् किसी एक व्यक्ति के हृदय में उत्पन्न हो गए हों, ऐसी बात नहीं। वस्तुतः इस प्रकार के मनोभावों की देश में एक पृष्ठभूमि थी, जो उनकी गुरु-परम्परा पर ध्यान देने से समझी जा सकती है। मुसलमानी शासकों ने देश के अनेक भू-भागों पर अधिकार जमाकर राज्य-शक्ति को अपने हाथ में कर लिया था। पर उन सत्ताधारियों से कहीं अधिक प्रभावशाली उन धर्म-गुरुओं का संगठन था, जिन्होंने जनता के भीतर प्रविष्ट होकर जनता की भाषा में उसी के स्तर पर धर्म का प्रचार किया।" (पद्मावत : मूल और संजीवनी व्याख्या, पृ० ५१)

जायसी के व्यक्तित्व में नम्रता और आत्मविश्वास का योग देखा जा सकता है। अपनी कुरूपता के बारे में स्वयं घोषणा करने वाले इस कवि में यह चेतना है कि उसने मर्मस्पर्शी काव्य रचा है और इस रचने के पीछे गहरी प्रेमभावना तथा उससे उत्पन्न विकलता है। जायसी आश्वस्त हैं कि जो उन्हें पढ़ेगा, वह उनके महत्त्व का स्मरण करेगा :

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा॥
जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई॥

केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी हम्ह सँवरै दुइ बोल॥

जायसी की यह सहज गर्वोक्ति पद्मावत को लेकर है जो जायसी की रचनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण काव्य है। भारतीय महाकाव्यों में इस रचना का अपना स्थान है। अवधी में 'रामचरितमानस' लिखकर अभूतपूर्व यश प्राप्त करने वाले महाकवि गोस्वामी तुलसीदास को (अवधी में प्रबन्ध-रचना की) राह दिखाने वाले मार्मिक महाकाव्य के रूप में भी 'पद्मावत' का महत्व स्वीकार किया गया है। जायसी की अन्य (प्रकाश में आ चुकी) रचनाएँ ये हैं—अखरावट, आखिरी कलाम, चित्ररेखा, मसलानामा, कहरानामा (इसी को माताप्रसाद गुप्त महरीबाईसी) कहते हैं।) कुछ अन्य रचनाएं भी जायसी के नाम के साथ जुड़ी है जिनकी प्रामाणिकता निश्चित नहीं है—जैसे : सखरावत, चम्पावत, इतरावत, खुर्वानामा, मोराईनामा, पोस्तीनामा, होलीनामा आदि। यह सूची ही बता रही है कि कवि के रूप में मलिक मुहम्मद जायसी की कीर्ति का एक ही महत्त्वपूर्ण आधार 'पदमावत' है जिसे कवि ने रक्त और प्रेम-जल से भिगोकर लिखा है और जिसके बारे में वह आश्वस्त है :

जो यह पढ़ै कहानी···

अन्त में, आज के जायस में जायसी को लेकर जो कहानियाँ कही जाती हैं वे संकेत करती हैं कि लोक ने जायसी के स्वभाव को किस रूप में स्वीकार किया है। जायसी इन कहानियों में किसान के रूप में उतने ही प्रसिद्ध हैं जितने सन्त और कवि के रूप में। एक कहानी यह है कि जायसी अपने खेतों की रखवाली में तप रहे थे—दिन चढ़ आया था—उनका अपना कलेवा नहीं आया था—कोई दूसरी स्त्री अपने हिस्से की जो वस्तु उन्हें दे रही थी वह भुना हुआ चावल था जिसे लोक-भाषा में 'भूजा' या 'फरुही' कहते हैं : जायसी ने उसे पाकर कहा : 'जो अस जरै सो कस नहिं महकै।' अर्थात् जो जलता है, वही सुगन्धि देता है। कहना न होगा कि इस कहानी में एक सामान्य कथन ने जीवन के प्रति एक साधक कवि की समूची जीवन-दृष्टि का रूप ले लिया है।

'पदमावत' की कहानी : कहानी का अर्थ

'पदमावत' अपने-आप में एक मार्मिक प्रेम कहानी है—महाकाव्य के ढाँचे में कही गई प्रेम कहानी—जिसमें कल्पना और इतिहास का रोचक संगठन है। कहानी का पूर्वार्द्ध कल्पना पर आधारित है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक यथार्थ पर। पहले इस प्रेमकहानी को प्रेमकहानी के रूप में देखना ही उचित है जो इस प्रकार है :

सभी द्वीपों में अलग, अद्वितीय सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्वसेन और रानी चम्पावती के यहाँ पद्मावती ने जन्म लिया। लगा कि वह सूर्य की किरणों से रची गई थी। जब वह बड़ी होने लगी, उसके विवाह के लिए वर पक्ष की ओर से प्रस्ताव आने लगे। पर अपने गर्व में राजा गन्धर्वसेन उन्हें नकारात्मक उत्तर देकर लौटा देते। बारह वर्ष की आयु में पद्मावती वयस्क समझी जाने लगी। उसे सात खण्डों वाला धवलगृह स्वतन्त्र रूप से रहने के लिए मिला। खेल-विनोद के लिए सखियाँ मिलीं। ज्ञान चर्चा के लिए अत्यन्त गुणी और पण्डित स्वभाव वाला तोता मिला—हीरामन। एक दिन पद्मावती ने हीरामन से अपनी काम-विकलता और अपने विवाह के प्रति पिता की उदासीनता की चर्चा की। तोते ने कहा—विधाता का लेख तो अमिट है पर मुझे आज्ञा दो, कि तुम्हारे योग्य वर खोज सकूँ। किसी दुर्जन ने यह संवाद राजा तक पहुँचा दिया। राजा ने तोते को मार डालने के लिए आदेश दिया। पद्मावती ने अपने अनुनय-विनय से तोते को बचा लिया। तोता जानता था कि इस बार तो वह बच गया पर आगे उसका जीवन सुरक्षित नहीं। एक दिन जब पद्मावती सखियों के साथ सरोवर-स्नान के लिए गई थी, हीरामन उड़ निकला। जहाँ वह पहुँचा वह ढाक का जंगल था। पक्षियों से उसे सहज सम्मान मिला। उधर पद्मावती ने आकर देखा, तोता पिंजरे को सूना छोड़कर चला गया था। वह बहुत रोई। सखियों से उसने तोते की खोज के लिए निवेदन किया। सखियों ने समझाया—अब वह स्वतन्त्र हो गया है—इस बन्धन में क्यों आएगा। उधर जंगल में आए हुए बहेलिए ने तोते को पकड़ लिया और बाजार में उसे बेचने के लिए ले गया। चित्तौड़ के एक व्यापारी के साथ एक

साधारण ब्राह्मण भी कुछ रुपये लेकर लाभ की आशा में सिंहल की हाट में आया था। सब व्यापारियों ने कुछ न कुछ खरीदारी की और घर लौटने की तैयारी करने लगे। ब्राह्मण की गाँठ में पूंजी इतनी कम थी कि वह चिन्ता में सोचता ही रह गया कि क्या खरीदे। तभी वह बहेलिया तोते को बेचने आ पहुँचा। उसका रंग सुनहला था और उसमें एक अद्‌भुत सम्मोहन भी था। ब्राह्मण ने तोते को सीधे सम्बोधित कर उसके गुणों के बारे में जिज्ञासा की, तोते ने कहा—"जब मैं गुणी था, तब मुक्त था। मैं बिकने आ गया हूं। अब मेरे गुण कहाँ।" पर ब्राह्मण ने जान लिया कि वह गुणी और पण्डित है। उसने तोते को खरीद लिया और उसे चित्तौड़ ले आया :

बाम्हन मुआ बेसाहा, सुनि मति वेद गरंथ।
मिला आइ कै साथिन्ह, भा चितउर के पंथ॥

चित्तौड़ में उस समय राजा चित्रसेन की मृत्यु हो चुकी थी। उसका पुत्र रत्नसेन गद्दी पर बैठा था। तोते की प्रशंसा सुन उसने उसे लाख रुपये देकर खरीद लिया। एक दिन जब रत्नसेन शिकार पर निकला था, उसकी रूपगर्विता पटरानी नागमती ने तोते से प्रश्न किया—"मुझ जैसी सुन्दरी क्या कोई दूसरी भी इस दुनिया में है।" हीरामन ने हँसकर सिंहल की पद्मिनी स्त्रियों का वर्णन किया और कहा—'उनमें और तुममें दिन और अँधेरी रात का अन्तर है :

का पूछहु सिंघल कै नारी। दिनहिं न पूजै निसि अंधियारी॥
गढ़ी सो सोने सौंध भरी सो रूप भाग।
सुनति रुखि भइ रानी, हिये लोन अस लाग॥

वह पद्मावती—सुगन्धित सोने से गढ़ी गई है—रूप और भाग्य उसमें सहज व्याप्त है। नागमती के लिए वह वर्णन असह्य था। वह डर गई कि यदि यही बात कहीं वह राजा से कह दे तो रूप के प्रलोभन से योगी होकर चल देगा। उसने अपनी धाय से उसे मार डालने के लिए कहा। धाय ने भावी परिणाम के भय से हीरामन को बस छिपा लिया। जब रत्नसेन ने आकर देखा—तोता नहीं है—वह क्रोध से भर उठा। अन्त में हीरामन सामने लाया गया और उसने सारा वृत्तान्त कहते हुए पद्मावती के अपार रूप का वर्णन किया—उस रूप का—जो अपनी उपमा आप ही है—'का सिंगार ओहि बरनौं राजा। ओहिक सिंगार ओहि पै छाजा॥' यह वर्णन सुनकर रत्नसेन मूर्च्छित हो गया। जब चेतना लौटी, वह पद्मावती की खोज में योगी होकर निकल पड़ा। हीरामन ही उसे सिंहलद्वीप का रास्ता दिखा रहा था। रत्नसेन ने माँ और पत्नी के विलाप पर ध्यान न दिया। उसकी आसक्ति एक ही दिशा की ओर खिंची हुई थी।

जेहि के हिये पेम-रंग जामा। का तेहि भूख नींद बसरामा॥
बन अँधियार रैनि अँधियारी। भादों बिरह भएउ अति भारी॥
किंगरी हाथ गहे बैरागी। पाँच तन्तु धुन ओही लागी॥
नैन लाग तेहि मारग, पद्मावति जेहि दीप।
जैस सेवतिहि सेवै, वन चातक, जल सीप॥

इस यात्रा में उसके साथ सोलह हज़ार कुँवर भी योगी होकर चले। एक महीने तक लगातार चलते हुए वे कलिंग में समुद्र तट पर पहुँचे। वहाँ के राजा ने सिंहल-द्वीप जाने के लिए उन्हें जहाज दिया। सात समुद्र पार कर वे सिंहलद्वीप पहुँचे। सातवाँ समुद्र मानसर ही था--जिसके सुन्दर रूप को देखकर जों प्रसन्नता हुई, वही कमल की वेल बनकर मन पर छा गई। अँधेरा चला गया था। रात्रि की कालिमा छूट चुकी थी :

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।
गा अँधियार रैन मसि छूटी। भा भिनसार किरिन रवि फूटी॥

× × ×

भोर जो मनसा मानसर, लीन्ह कँवल रस आइ।
घुन जो हियाव न कै सका झूर काठ तस खाइ॥

हीरामन के निर्देशन से रत्नसेन महादेव के मन्दिर में साथी योगियों के साथ बैठकर पद्मावती का ध्यान करने लगा। हीरामन पद्मावती से मिलने गया तो कहकर गया—कि वसन्त पंचमी के दिन पद्मावती इसी महादेव के मण्डप में वसन्तपूजा के लिए आयेगी। उस समय तुम वह अपार रूप देख सकोगे :

तुम्ह गौनहु ओहि मण्डप, हो पद्मावति पास।
पूजै आइ बसन्त जब, तब पूजै मन आस॥

हीरामन को इतने समय बाद पाकर पद्मावती बहुत रोई। हीरामन ने अब तक जो घटित हो चुका था, वह सब बताया और फिर रत्नसेन के गुणों तथा उसके प्रेम की पात्रता, दृढ़ता की चर्चा की। पद्मावती उसकी प्रेमविकलता से प्रभावित हुई। उसे लगा कि वही विकलता उसके मन में भी कुछ नए अनुभवों का संसार बना रही थी। उसने कहा—वसन्त पंचमी के दिन मैं पूजा के बहाने मन्दिर में जाऊँगी। हीरामन ने मन्दिर में ध्यानलीन रत्नसेन तक यह सन्देश पहुँचा दिया।

वसन्त पंचमी के दिन पद्मावती सखियों के साथ महादेव के मन्दिर में गई। पूजा करके वह योगियों को देखने के बहाने उस ओर गई जहाँ रत्नसेन ध्यान लीन था। रत्नसेन उसके रूप को देखते ही संज्ञाशून्य हो गया। पद्मावती ने उसे

चेतना की स्थिति में लाने के लिए चन्दन का लेप किया जिससे वह और भी प्रगाढ़ नींद में लीन हो गया। पद्मावती ने उसके हृदय पर चन्दन से ये अक्षर लिख दिए—'हे योगी ! जब मैं तेरे द्वार पर आई तू सो गया। यदि मुझ (चन्द्रमा) पर तेरी (सूर्य की) अनुरक्ति होगी तो तू गढ़ में प्रवेश कर सतमन्जिले महल तक आएगा।'

तब चंदन आखर हिए लिखे । भीख लेइ तुइ जोग न सिखे ।।
घरी आइ तब गा तू सोई । कैसे भुगुति परापति होई ।।
अब जौं सूर अहौ ससि राता । आएउ चढ़ि सो गगन पुनि साता ।।

रत्नसेन की चेतना लौटी तो न वह वसन्त था, न वह वाटिका थी, न खेल था, न खेलने वाली। वह पश्चात्ताप से विलाप करने लगा और उसने जल मरने का निश्चय किया। उसकी विरहाग्नि सारे संसार को जला सकती है, इस भय से देवताओं ने महादेव-पार्वती को सूचित किया कि वे कुछ करें। महादेव कोढ़ी के वेश में* बैल पर चढ़कर रत्नसेन के पास आये और जलने का कारण पूछा। उधर पार्वती ने उसके सच्चे प्रेम की परीक्षा के लिए यह छल किया। वे रत्नसेन के पास अप्सरा वेश में प्रकट हुईं और बोलीं—'मैं स्वर्ग की अप्सरा हूँ। मुझे इन्द्र ने तुम्हारे लिए भेजा है। पद्मावती तो गई। अब मैं हूँ।' रत्नसेन ने कहा—मुझे न स्वर्ग चाहिए, न अप्सरा। मुझे पद्मावती के अतिरिक्त कोई कामना नहीं·

भलेहिं रंग अछरी तोर राता । मोहिं दोसरें सौं भावा न बाता ।।
जौं जिउ देइहौं ओहि कै आसा । न जानौं काह होइ कबिलासा ।।

तुम्हारा रूप आकर्षक है पर मैं क्या करूँ। मुझे तो दूसरे से प्रयोजन ही नहीं। उसके लिए प्राण दे दूंगा तो न जाने तुम्हारे स्वर्ग में क्या कुछ घटित हो जायगा। पार्वती ने तब महादेव से कहा—इसका प्रेम सच्चा है। आप इसकी सहायता करें। रत्नसेन ने महादेव के रूप को भी पहचान लिया और उसके चरणों में गिर पड़ा। महादेव ने उसे सिद्ध गुटिका दी और सिंहलद्वीप में प्रवेश का मार्ग बताया। वे फिर अन्तर्धान हो गये।

---

* शिव द्वारा जायसी की परीक्षा लिए जाने की कहानियाँ आज भी लोक में प्रचलित हैं। एक कहानी यह है कि जायसी की पत्नी सुबह के कलेवे के लिए एक दिन खेत पर मट्ठा लेकर गई थीं। बाँटकर कलेवा करना उन्हें प्रिय था। पर उस दिन जो व्यक्ति सामने आया और जायसी का स्नेह निमंत्रण अचानक पा गया वह गलित कण्ठ से पीड़ित था। पर अब तो निमंत्रण दिया जा चुका था। पात्र एक ही था। जायसी ने उसे पीने के लिए कहा। शेष जायसी पीने ही जा रहे थे कि वह गायब हो गया। लोक में उसे शिव ही कहा गया।

सिद्धि गुटिका पाकर राजा रत्नसेन ने योगियों के साथ सिंहलगढ़ को घेर लिया। दुर्गरक्षकों ने राजा गंधर्वसेन को उसके दुस्साहस की सूचना दी। राजा ने अपने दूत भेजे, जिन्होंने यह संदेश दिया कि 'तुम्हें जो भीख चाहिए, माँग लो, और जप-तप के लिए अन्यत्र स्थान चुनो। रत्नसेन ने पद्मावती की ही माँग की। दूत क्रुद्ध लौटे। गंधर्वसेन के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने योगियों को मारकर भगा देने का आदेश दिया। मंत्रियों ने योगियों से उलझने की सलाह न दी। इस बीच हीरामन ने रत्नसेन का प्रेमसंदेश पद्मावती तक और पद्मावती का संदेश रत्नसेन तक पहुँचा दिया। इससे रत्नसेन की प्रेमसाधना और पुष्ट हुई। गढ़ के भीतर के अथाह कुण्ड में वह रात में जा धँसा और भीतरी द्वार को, जिसमें वज्र के किवाड़ लगे थे, खोल लिया। पर तभी सवेरा हो गया और रत्नसेन अपने साथियों के साथ घेर लिया गया। राजा गन्धर्वसेन का निश्चय था—योगियों को सूली दे दी जाय। उसके सरदारों ने योगियों पर चढ़ाई की। योगी भी युद्ध के लिए प्रस्तुत थे पर रत्नसेन ने उन्हें यह कह कर रोक लिया कि प्रेम के मार्ग में क्रोध के लिए स्थान नहीं। अन्ततः योगियों सहित रत्नसेन बन्दी बना लिया गया। पद्मावती की विकलता की कोई सीमा नहीं थी पर हीरामन ने रत्नसेन को अब पूर्ण सिद्ध बताकर उसे आश्वस्त किया कि उसका अनिष्ट नहीं हो सकता :

तुम ओहिके घट, वह तुम माहाँ। काल कहाँ पावै वह छाहाँ॥
अस वह जोगी अमर भा परकाया परवेस।
आवै काल, गुरुहि तहँ देखि सो करै अदेस॥

जब रत्नसेन को बाँध कर सूली देने के लिए लाया गया तो उसे देखकर सबने अनुभव किया कि यह कोई राजपुत्र है। वह अपने में डूबा हुआ पद्मावती का नाम रट रहा था। महादेव और पार्वती पुनः भाट-भाटिनी का रूप धारण कर प्रकट हुए। भाट के रूप में महादेव ने राजा गन्धर्वसेन को समझाया कि यह योगी नहीं राजा है—तुम्हारी कन्या के योग्य वर है। इसका राजा के मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बस उसके क्रोध में और उत्तेजना आ गई। योगियों का दल जूझने के लिए आगे बढ़ा। हनुमान आदि देवता भी उनकी सहायता के लिए प्रस्तुत थे। भाट ने राजा को समझाने की कोशिश की, कि यह योगी चित्तौड़ का राजा रत्नसेन है। यह पद्मावती के लिए ही योगी हुआ है। तुम्हारा तोता हीरामन ही इसे प्रेरित कर यहाँ ले आया है। हीरामन का नाम सुनते ही गन्धर्वसेन ने स्थिति समझ ली। हीरामन बुलाया गया। उसने भाट की बात का समर्थन किया। रत्नसेन के बन्धन खोल दिये गये। गन्धर्वसेन ने पद्मावती का विवाह रत्नसेन से कर दिया। उसके अन्य योगी साथियों का विवाह भी पद्मिनी कुमारियों से सम्पन्न हुआ। वे कुछ समय तक सिंहलद्वीप में रहे। विवाह का वर्णन अपने-आप में एक प्रसंग है—

पद्मावती और रत्नसेन दोनों के रूप के वर्णन में कवि की सतर्कता लक्ष्य की जा सकती है :

पद्मावति धौराहर चढ़ी। दहुँ कस **रवि** जेहि कहँ **ससि** गढ़ी ।।
× × ×
सखी देखावहिं चमकै बाहू। तू जस **चाँद सुरज** तोर नाहू ।।
× × ×
सहसौ कला रूप विधि गढ़ा। सोने के रथ आवै चढ़ा ।।
× × ×
रूपवंत जस दरपन घनि जू जाकर कंत।
चाहिय जैस मनोहर मिला सो मन भावंत ।।

('चाँद', 'सूरज' के संकेत दूसरे अर्थ की छाया भी पकड़ते हैं।)

चित्तौड़ में वियोगिनी नागमती को राजा की प्रतीक्षा करते हुए एक वर्ष हो गया। उसे जीवन में केवल अंधकार दिखाई देता था। उसके विलाप ने पशु-पक्षियों तक को विचलित कर दिया। अंत में कभी आधी रात के समय एक पक्षी ने नागमती के दुःख का कारण पूछा : 'तू फिरि फिरि दाहै सब पाखी। कैहि दुख रैन न लावसि आँखी ।।' नागमती का संदेश लेकर वह पक्षी सिंहलद्वीप जा पहुँचा और एक पेड़ पर उसने आश्रय लिया। एक दिन रत्नसेन शिकार खेलता हुआ उसी पेड़ के नीचे आकर रुका। तभी पक्षी ने नागमती का मर्म-संदेश कह सुनाया। रत्नसेन चित्तौड़ की स्मृति से विह्वल हो उठा :

भा उदास जौ सुना संदेसू। सँवरि चला मन चितउर देसू ।।
कँवल उदास जो देखा भँवरा। थिर न रहै अब मालति सँवरा ।।

कमल के रूप में पद्मावती उदास हुई क्योंकि भ्रमर सरीखे रत्नसेन के मन में मालती जैसी नागमती की याद विकलता पैदा कर रही थी। रत्नसेन ने गन्धर्वसेन से विदा ली। विदा के समय उसे अपार धन द्रव्य की प्राप्ति हुई। वह सोचकर प्रसन्न था कि इतनी समृद्धि के साथ चित्तौड़ लौट रहा है। वह समुद्र तट पर पहुँचा ही था कि स्वयं समुद्र याचक रूप में आ खड़ा हुआ और उसने उसके धन के ४०वें भाग की याचना की। राजा रत्नसेन तो प्रलोभन के दबाव में था। उसने असहमति व्यक्त की। रत्नसेन समुद्र की आधी दूरी भी तय नहीं कर पाया था कि भयंकर तूफान आ गया। रत्नसेन के जहाज दिशा भूलकर लंका की ओर बह निकले। वहाँ विभीषण का एक राक्षस मछली मार रहा था। उसने छलपूर्वक आश्वासन दिया कि वह रास्ते पर ला देगा। पर ले गया वह सब जहाजों को एक भयंकर समुद्र में—जहाँ से मुक्ति कठिन थी। जहाजों का संतुलन नष्ट हो गया।

हाथी, घोड़े, मनुष्य डूबने लगे। तब समुद्र के राजपक्षी ने आकर रक्षा की। वह राक्षस को चंगुल में दबाकर उड़ गया। पर जहाज तब तक खण्ड-खण्ड हो चुके थे। जहाज के एक तख्ते पर राजा बह चला और दूसरे पर प्रतिकूल दिशा में रानी बह चली :

बोहित टूक-टूक सब भए। एहु न जाना कहँ चलि गए॥
भए राजा रानी दुइ पाटा। दूनौ बहे चले दुइ बाटा॥
काया जीउ मिलाइ कै, मारि किइ दुइ खंड।
तन रोवै धरती परा, जीउ चला बरम्हंड॥

पद्मावती मूर्च्छा में ही वहाँ पहुँची जहाँ समुद्र की कन्या लक्ष्मी अपनी सहेलियों के साथ खेल रही थी। लक्ष्मी ने उसे इस स्थिति में पाया तो अपने घर ले गयी। उसके उपचार से पद्मावती चेतना की स्थिति में आई तो रत्नसेन के लिए विलाप करने लगी। लक्ष्मी ने अपने पिता समुद्र से रत्नसेन का पता लगाने के लिए कहा। राजा एक ऐसे निर्जन स्थान में पहुँचा जहाँ केवल मूंगों के टीले थे। वह कटार से अपना गला काटने ही जा रहा था कि समुद्र ब्राह्मण रूप में आ पहुंचा। उसने देखा कि राजा प्रलोभन के जाल से मुक्त है। तब उसने आश्वासन दिया कि वह पद्मावती तक पहुँच सकेगा। जब राजा समुद्र के साथ घाट तक पहुँचा तो इस बार लक्ष्मी ने रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा ली। वह पद्मावती का रूप धारण कर रत्नसेन के सम्मुख थी पर रत्नसेन ने मुँह फेर लिया। तब लक्ष्मी उसे पद्मावती से मिलाने ले गई। अब वे वहाँ सहज हो चुके थे। उन्होंने समुद्र का आतिथ्य स्वीकार किया। लक्ष्मी ने पद्मावती को विदा के समय जो पान का बीड़ा दिया उसमें रत्न और हीरे थे। समुद्र ने अमृत, हंस, सोनहा पक्षी, शार्दूल (सिंह) और सोना बनाने का पारस पत्थर—ये पाँच रत्न भेंट किये। समुद्र की ओर से भेजे गये पथ प्रदर्शकों ने उन्हें निर्बाध रूप से जगन्नाथपुरी पहुँचा दिया। सेना के साथ राजा चित्तौड़ पहुँचा और वहाँ दोनों रानियों (नागमती, पद्मावती) के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। नागमती से नागसेन, पद्मावती से कमलसेन—ये दो पुत्र राजा को हुए।

चित्तौड़ की राजसभा में राघव चेतन नाम का पण्डित इसलिए विशेष चर्चित था कि उसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजा ने पण्डितों से दूज की तिथि के बारे में जिज्ञासा की। राघव ने कह दिया 'आज'। अन्य पण्डितों ने कहा—'आज नहीं, कल'। राघव चेतन ने यक्षिणी के प्रभाव से उसी दिन दूज का चंद्रमा दिखा दिया पर जब अगले दिन पुनः दूज की तिथि के लक्षण देखे गये तो पण्डितों ने राजा का ध्यान राघवचेतन के छल की ओर आकृष्ट किया। राघव चेतन का भेद खुल गया और उसे देश से निर्वासन का दंड दिया गया। पद्मावती को जब इस

INSTITUTE OF ADVANCED ... Acc. No. 94866

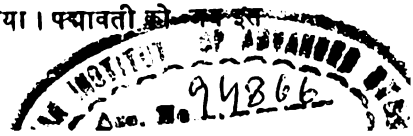

घटना का पता चला तो वह भयभीत हुई कि ऐसे पण्डित का असंतुष्ट या कुपित होना राज्य के लिए हितकर न होगा। उसने सूर्यग्रहण के बहाने बुलाकर उसे अपने हाथ का एक अमूल्य कंगन दान के रूप में दिया। जिसके जोड़े का कंगन कहीं प्राप्त न था। पर जब पद्मावती गवाक्ष से कंगन दे रही थी, उसकी झलक पाकर ही राघव चेतन अचेत हो गया :

पद्मावती जो झरोखे आई। निहकलंक ससि दीन्ह दिखाई॥
ततखन राघव दीन्ह असीसा। भएउ चकोर चंदमुख दीसा॥

× × ×

कंकन एक कर काढ़ि पवारा। काढ़त हार टूट और मारा॥

× × ×

जानहु टूटि बीजु भुइँ परी। उठा चौंधि राघव चित हरी॥
परा आइ भुइँ कंकन, जगत भएउ उजियार।
राघव बिजुरी मारा, बिसंभर किछु न सँभार॥

चेतना की स्थिति में उसने निश्चय किया कि वह दिल्ली के बादशाह तक यह सौन्दर्य-संवाद पहुँचाएगा। वह ज़रूर ही पद्मावती की प्राप्ति की कामना से चित्तौड़ पर आक्रमण करेगा और इस प्रकार राजा से बदला लिया जा सकेगा :

कँवल बखानौ जाइ तहँ जहँ अलि अलाउद्दीन।
सुनि कै चढ़ै भानु होइँ, रतन जो होइ मलीन॥

राघव चेतन सीधे दिल्ली पहुँचा और अलाउद्दीन के समक्ष उसने पद्मावती के अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन किया। 'सबै चितेरे चित्र के हारे / ओहिक रूप कोइ लिखै न पारे /'—ऐसे अद्वितीय सौन्दर्य का परिचय पाकर अलाउद्दीन की वासना जगी। उसने राघव चेतन का आदर-सत्कार किया और सरजा नामक एक दूत को चित्तौड़ भेजा। रत्नसेन को सम्बोधित पत्र में सीधे लिखा गया था—'पद्मावती को दिल्ली भेज दो'। रत्नसेन ने क्रोधावेश में दूत को लौटा दिया। अलाउद्दीन ने बड़ी तैयारी से चित्तौड़ पर आक्रमण किया। आठ वर्ष तक वह गढ़ को घेरे ही रहा, पर गढ़ न टूट सका :

आठ बरिस गढ़ छेंका रहा। धनि सुलतान कि राजा महा॥
आइ साह अँबरावँ जो लाए। फरै झरै पै गढ़ नहिं पाए॥

उधर गढ़ घिर जाने पर राजपूतों की स्त्रियाँ चिता सजाकर रखती थीं कि वे पुरुषों की पराजय के बाद शत्रु के हाथ न पड़ें। जौहर होने पर पद्मावती की प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती थी। तभी दिल्ली से हरेव लोगों के आक्रमण की सूचना

मिली। अलाउद्दीन को लगा कि इस प्रकार तो दिल्ली ही मुझ से छिन जायेगी। उसने अब रण-नीति बदल दी। छलपूर्वक पुनः दूत से कहला दिया—'बादशाह का पद्मावती के लिए कोई आग्रह नहीं है। तुम अपने राज्य का भोग करो—साथ ही चँदेरी भी तुम्हारी है। समुद्र से जो पाँच रत्न तुमने प्राप्त किये हैं, उन्हें देकर अधीनता स्वीकार कर लो'। राजा रत्नसेन को इस प्रस्ताव में कोई अन्यथा-गंध नहीं मिली। उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अलाउद्दीन ने सन्देश भेजा कि वह अगले दिन गढ़ देखने आ रहा है।

बादशाह के लिए राजसी भोज का आयोजन किया गया। सरजा और राघव चेतन के साथ बादशाह आया। गोरा और बादल—इन विश्वासपात्र सरदारों ने राजा को सतर्क किया कि अलाउद्दीन के इस आगमन की कोई दूषित प्रेरणा भी हो सकती है। पर रत्नसेन ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। कई दिनों तक बादशाह ने रत्नसेन का आतिथ्य स्वीकार किया और इसी क्रम में एक दिन वह पद्मावती के महल की ओर चला गया। वहाँ एक से एक रूपवती स्त्रियाँ स्वागत की मुद्रा में खड़ी थीं। बादशाह ने राघव चेतन से, जो छाया की भाँति साथ लगा था, प्रश्न किया—इनमें पद्मावती कौन है। राघव ने कहा—'ये तो उसकी दासियाँ हैं। इनसे उसकी क्या समानता हो सकती है। बादशाह एक दिन वहीं महल के सामने बैठकर रत्नसेन के साथ शतरंज खेलने लगा। वहाँ उसने एक दर्पण भी इस आशय से रख लिया कि यदि पद्मावती गवाक्ष पर आती है तो उसकी छाया-आकृति दर्पण में दिखाई दे जायगी। इस बीच कुतूहलवश पद्मावती गवाक्ष पर आई और दर्पण में उसकी छाया देखकर बादशाह अचेत हो गया :

विहँसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साह दरपन महँ देखी॥
होतहिं दरस परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना॥
रुख माँगत रुख तो सहुँ भएऊ। भा शह मात खेल मिटि गएऊ॥
राजा भेद न जानै झाँपा। भा बिसँभार, पवन बिनु काँपा॥

राघव चेतन ने बहाना बना लिया कि बादशाह को सुपारी लग गई है।

बादशाह ने राघव चेतन से उस देखे हुए रूप-रहस्य का वर्णन किया और राघव चेतन ने इस बात की पुष्टि की कि वही पद्मावती थी। सहज होकर बादशाह ने राजा से विदा माँगी। राजा उसके साथ-साथ गया। हर फाटक पर बादशाह राजा को कुछ न कुछ देता जा रहा था। छठे फाटक पर माण्डवगढ़ तथा सातवें पर चँदेरी दी। सातवाँ फाटक पार करते हुए राजा रत्नसेन को बन्दी बना लिया गया और वह दिल्ली की क़ैद में तरह-तरह की यातनाएँ झेलता रहा। बादशाह की एक ही शर्त थी—पद्मावती को देकर छुटकारा सम्भव है। रत्नसेन इस पर कैसे सहमत हो सकता था। उसे अन्धकूप में डाल दिया गया।

चित्तौड़ में सभी व्याकुल थे। नागमती पद्मावती विलाप कर रही थीं। कुंभलनेर का राव देवपाल रत्नसेन से शत्रुता मानता था। वह परम ईर्ष्यालु था। उसने पद्मावती के अपहरण की योजना बनाई और यह काम एक बूढ़ी दूती के हवाले किया। दूती पद्मावती से मिली और उसने अपना परिचय ही छलपूर्वक दिया—कहा कि 'मैं तुम्हारे बचपन की धाय हूँ'। इस पर वे गले मिलकर रोती रहीं। फिर दूती ने पद्मावती से कहना शुरू किया—'रत्नसेन तो गया। अपना यौवन क्यों उजाड़ती हो। कुंभलनेर के राव देवपाल के पास चलो'। अब पद्मावती को इस दुष्चक्र का ज्ञान हो गया और उसने दूती को प्रताड़ित कर भगा दिया। पद्मावती रत्नसेन को मुक्त करने के लिए अनेक प्रकार के यत्न—दान-पुण्य करने लगी। यह संवाद जानकर अलाउद्दीन ने भी पुनः छल किया और एक युवती दूती को जोगिन के वेश में भेजा। उसने अपनी यात्राओं के अनुभव बताकर कहा कि वह रत्नसेन को सुलतान के बन्दी गृह में देख आई है – उसे कठिन यातनाएँ दी जा रही हैं। पद्मावती उसके साथ दिल्ली जाने-जाने को हुई कि अपने प्रिय को छुड़ा सके। पर सखियों ने रोक कर सलाह दी—'गोरा बादल के पास जाकर उनकी सहायता प्राप्त करो'।

रानी पद्मावती गोरा बादल के घर गई। पद्मावती के दुख से वे स्वयं आकुल हो उठे। उन्होंने भी छल के विरुद्ध छल की ही युक्ति लगाने की बात सोची। गोरा बादल ने सोलह सौ पालकियाँ सजाईं। प्रत्येक पालकी में एक-एक सशस्त्र सैनिक को बिठाया। सबसे मूल्यवान पालकी में एक लुहार बैठा। इस प्रकार वे यह प्रचारित करके चले कि पद्मावती दिल्ली जा रही है। उसके साथ सोलह सौ सखियाँ हैं। दिल्ली पहुँच कर गोरा सीधे बंदीगृह में पहुँचा और वहाँ के रक्षक अधिकारी को दस लाख रुपये भेंट देकर प्रार्थना की—'बादशाह से जाकर कहो कि रानी पद्मावती सखियों के साथ आ गई हैं। उसने अनुरोध किया है कि चित्तौड़ के भण्डार और गढ़ की चाभी उसके पास है। यदि एक घड़ी के लिए वह राजा से मिल सके तो चाभी उसे सौंप कर महल में आ जाय।' इस पर बादशाह ने रक्षक भेजे पर दस लाख की अन्यथा-भेंट पाकर उन्होंने पालकियों को देखा ही नहीं। पद्मावती को राजा से मिलने की आज्ञा प्राप्त हो गई। पालकी राजा के पास तक गई। उसमें से निकलकर लुहार ने बन्धन काट दिए। राजा सशस्त्र घोड़े पर जा बैठा। अन्य पालकियों में से भी सशस्त्र सैनिक निकले। गोरा बादल ने तलवारें खींच लीं और वे विजय की मनःस्थिति में राजा को लेकर चित्तौड़ की ओर चल पड़े :

गोरा बादल खाँड़ै काढ़े। निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े॥
तीख तुरंग गगन सिर लागा। केहुँ जुगुति करि टेकी बागा॥
जो जिउ ऊपर खड्ग सँभारा। मरनहार सो सहसन्ह मारा॥

भई पुकार साह सौं, ससि औ नखत सो नाहिं।
छरकँ गहन गरासा, गहन गरासे जाहिं॥

सूचना मिलते ही बादशाह ने बड़ी फौज लेकर पीछा किया। तब हजार सैनिकों को लेकर गोरा बादशाह की सेना के प्रतिरोध के लिए डट गया और बादल शेष सैनिकों के साथ चित्तौड़ की ओर चला। गोरा ने बहुत समय तक प्रतिरोध किया पर अन्त में वह अपने सहयोगियों सहित मारा गया। बादल रत्नसेन सहित चित्तौड़ पहुँच चुका था।

चित्तौड़ पहुँच कर रत्नसेन ने देवपाल की कुटिल योजना के बारे में सुना। वह क्रोध से भर उठा। उसने सोचा, जब तक शाही सेना चित्तौड़ आती है, वह कुंभलनेर जाकर देवपाल को बाँध लाएगा। वह सेना लेकर कुंभलनेर पहुँचा। देवपाल ने उसे सीधे द्वन्द्व युद्ध के लिए चुनौती दी। रत्नसेन ने चुनौती स्वीकार की। देवपाल ने रत्नसेन को विष बुझी साँग मारी जो नाभि को भेदकर पीठ की ओर जा निकली। देवपाल का धड़ भी रत्नसेन के प्रहार से अलग हो गया। रत्नसेन ने उसका सिर काटकर बांध लिया और चित्तौड़ की ओर चला। मार्ग में ही उसकी दशा बिगड़ गयी। उसने चित्तौड़गढ़ की रक्षा का भार बादल पर सौंप दिया। यह रत्नसेन के जीवन का अन्त था। शव चित्तौड़ ले जाया गया। राजा के शव के साथ नागमती पद्मावती दोनों रानियाँ सती हो गईं। तभी बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौड़गढ़ को घेर लिया और अन्ततः चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का प्रभुत्व स्थापित हो गया :

जोहर भइ सब इस्तरी पुरुष भए संग्राम।
बादसाह गढ़ चूरा चितउर भा इसलाम॥

यह 'पद्मावत' की सीधी कहानी है पर इस कहानी में रूपकात्मक प्रतीक-योजना इस प्रकार घुली-मिली है कि कहानी का एक ही अर्थ जायसी के पाठकों को सन्तुष्ट नहीं कर पाता। जिस तर्क से पात्रों के व्यक्तित्व का विधान किया गया है, उसमें ही दूसरे अर्थ की सम्भावना सक्रिय होती है। कहानी जहाँ समाप्त होती है वहाँ एक उपसंहार भी है—हालाँकि अध्येताओं में इसकी प्रामाणिकता विवादास्पद बनी हुई है :

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम किछु और न सूझा॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँधा सोइ, न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू॥
प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारेहु॥

हिन्दू परिवेश की प्रेम कथा और लोकभाषा के माध्यम का लाभ उठाकर कही गई इस महाकाव्योचित कहानी में पद्मावती ईश्वर की अद्वितीय सौन्दर्य-सत्ता का प्रतीक है, रत्नसेन अपनी गहरी प्रेम-व्याकुलता में जीवात्मा के लिए प्रतीक है, नागमती रत्नसेन और पद्मावती के सम्बन्ध में पहले बाधा ही बनी हुई है—इस आशय से वह माया (दुनिया धंधा) के लिए प्रतीक है। अलाउद्दीन भी माया का ही दूसरा रूप है और राघव चेतन शैतान का प्रतीक है। इस गूढ़ संकेत-प्रधान कहानी को जायसी इतने मार्मिक लगाव से कहते हैं कि कहानी का लौकिक अर्थ कहीं धुंधला नहीं पड़ता। प्रेम कहानी प्रेम कहानी के रूप में भी उतनी ही हृदयस्पर्शी है, जितनी रूपक-वस्तु के रूप में गहरे अर्थ से समृद्ध। दूसरी दृष्टि से, यह केवल प्रेमकहानी नहीं है, प्रेम और संघर्ष की मिली जुली कहानी है। इस प्रकार यह कहानी पण्डितों के ही लिए नहीं, सामान्य जन के लिए भी है।

प्रबन्ध के ढाँचे में मार्मिक कविता

जायसी की प्रबन्ध कल्पना का श्रेष्ठ तथा मार्मिक प्रमाण है 'पद्मावत'—जिसकी कथा की बनावट के दो हिस्से हैं—एक हिस्से में रत्नसेन पद्मावती की प्रेम कहानी है जो लौकिक में अलौकिक का रहस्य भरती है और प्रेम-विरह की तन्मयता का जादुई वातावरण रचती है। दूसरे हिस्से में अलाउद्दीन और रत्नसेन का चित्तौड़ केन्द्रित संघर्ष है। एक हिस्सा काल्पनिक है, दूसरा ऐतिहासिक यथार्थवादी। जायसी की रचनात्मक कल्पना पहले हिस्से को उच्चतर भूमि पर प्रतिष्ठित करती है पर दूसरे हिस्से के यथार्थ की उपेक्षा नहीं करती। पाठक 'पद्मावत' की रचना-वस्तु से गुज़रते हुए अनुभव करेंगे कि प्रबन्ध का परंपरागत ढाँचा तो यहाँ भी बना हुआ है पर कहानी की सीधी संवेदना की धार भी बनी हुई है। लोक में जो कहानियाँ प्रचलित होती है वे शास्त्र, रूढ़ियों का बार-बार अतिक्रमण भी करती हैं। विचारों की पूँजी लेकर कवि सहज कल्पना में जहाँ हस्तक्षेप करने लगता है वहाँ रचना की पूरी बनावट में दरार पड़ जाती है। इसकी चेतना जायसी में है।

जायसी अनुभव करते हैं कि 'पद्मावत' में लौकिक और आध्यात्मिक अर्थसूत्रों को मिलाकर ही जीवन के बुनियादी सत्यों तथा नियमों की व्याख्या की जा सकती है। स्त्री-पुरुष के प्रेम सम्बन्धों की पराकाष्ठा को जीवात्मा और ईश्वर के गहरे स्थायी प्रेमसम्बन्ध का समानार्थी माना गया है। कारण यह कि इस लौकिक अदम्य लगाव के प्रमाण तो हमें सहज प्राप्त हो जाते हैं। इसी के स्मरण से हम उस बड़े अलौकिक प्रेम की कल्पना भी कर सकते हैं। पूर्वपक्ष कहानी का दब जाय तो उत्तर-पक्ष का रोमांचक यथार्थ भी क्षीण हो जायगा। इस तरह प्रबन्ध कल्पना का एक ढाँचा-सा स्वीकृत है, जिसमें प्रेम कहानियाँ एक ही अभिप्राय से बोलचाल की भाषा में कही गई हैं। इस कल्पना में कहानी के जो रूप ढलते हैं—एक ही तरह के संगठन में उन्हें कथानक रूढ़ियाँ कहते हैं। जैसे इन प्रेम कहानियों में ज्ञानी पक्षी, सरोवर-स्नान, समुद्र में जहाज के टूटने जैसी बाधा-विपत्तियाँ, नायिका के लिए संघर्ष आदि कथानक रूढ़ियाँ हैं। अब जायसी जैसे बड़े कवि की विशिष्टता इस

अर्थ में है कि यहाँ रूढ़ि में भी नवीनता का जादू रच लिया गया है।

'पद्मावत' की प्रबन्धात्मकता में जीवन की अनेकरूपता नहीं है—यानी किन्हीं चरित्रों की पूरी जीवन-कहानी यहाँ नहीं कही जा रही है—कही जा रही है एक सीमित प्रेम कहानी—जो प्रेम की त्रिराटता में ही विस्तार पाती है। रत्नसेन, नागमती, पद्मावती, अलाउद्दीन के बीच सम्बन्ध की रूपरेखा है तो सीमित ही। नागमती आरम्भ में बाधा ज़रूर है, लेकिन आगे तो वह पद्मावती के साथ अभिन्न है—दोनों एक ही हैं। इसलिए ले-देकर एक त्रिकोणात्मक संघर्ष का कथानक है, जिसकी केन्द्रीय समस्या प्रेम ही है। पर अनेक घटनाएँ हैं, जो इस वस्तु सीमा को लाँघ जाती हैं। पद्मावत का मानसरोवर खण्ड अपने आपमें एक मार्मिक कविता है। इसी प्रकार युद्ध का वर्णन अपने आप में एक सम्पूर्ण इतिवृत्त है। यथार्थ चरित्र को अक्सर कल्पना एक दुहरा तिहरा अर्थ-स्तर प्रदान करती है। रत्नसेन कल्पित नहीं है, पर साधक के रूप में जिन स्थितियों से उसे गुज़रना पड़ता है, वे कल्पना की सृष्टि हैं और कल्पना भी यहाँ विचारों से निर्धारित होती है।

पद्मावत की मार्मिकता का केन्द्रीय आधार है—प्रेमपथ का निरूपण। मानवीय प्रेम संघर्ष में निखर कर बैकुण्ठी हो जाता है—दिव्य रूप पा लेता है : यह प्रेम अपने आप में मार्मिक कविता है अर्थात् वह केवल इतिवृत्त का अंग नहीं है। इस रूप और प्रेम से सारी दुनिया बिंधी हुई है :

उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहिं न गने। वे सब बान ओही के हने॥

हीरामन सामान्य पक्षी नहीं है। वह कवि की कथा-कल्पना में गुरु का प्रतीक है। पर यही उसका कुल रूप नहीं है। पद्मावती के विवाह-पूर्व जीवन में वह सख्यभाव से जुड़ा है। पद्मावती के लिए उसकी आत्मीयता, मैत्री मूल्यवान है। गुरु तो वह रत्नसेन के लिए सिद्ध होता है। उसे पद्मावती के अद्वितीय रूप का ज्ञान कराता है। कठिन राह पर चलने की दीक्षा देता है। साधक रत्नसेन की सिंहलद्वीप यात्रा उसीके निर्देशानुसार सम्पन्न होती है। अपने गुणों के कारण है वह परम विश्वसनीय। गन्धर्वसेन को भी रत्नसेन के वास्तविक रूप की जानकारी नहीं देता है या शिव द्वारा छद्मवेश में दी गई जानकारी को नहीं प्रमाणित करता है।

इस प्रबन्ध कविता में प्रेम कहानी के लौकिक आध्यात्मिक रूप ही सब कुछ नहीं हैं—कहानी में वर्णित गढ़ भी महत्त्वपूर्ण है—हाट बाज़ार भी—राजभवनों का स्थापत्य भी, वसन्त पूजा भी, युद्ध भी। गोरा बादल पद्मावती के अनुरोध पर युद्ध के लिए सहज प्रस्तुत हो जाते हैं—इसके पीछे एक सहज तनाव भी है। गोरा बादल जब प्रयाण कर रहे होते हैं, बादल की नवागता वधू प्रार्थना-कातर हो उठती है। प्रत्यक्षतः इसकी ओर आगे ध्यान न दिया गया हो—एक प्रार्थना-

द्रवित चेहरा युद्ध-वर्णन के पृष्ठों पर उभर तो जाता ही है। युद्ध का पूरा वर्णन अपनी वस्तुगत व्यापारगत सक्रियता में अत्यन्त प्रभावी बन पड़ा है। यह साधारण युद्ध है भी नहीं—यह एक कठिन ऐतिहासिक युद्ध है जिसके परिणाम देश और काल के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। जो लड़ रहे हैं और पराजित हो रहे हैं, उनके पीछे मूल्यों के लिए सब कुछ का त्याग करने की बहुत बड़ी शक्ति है। पद्मावती के लिए युद्ध हो रहा है—जो सुन्दरी स्त्री ही नहीं है, चन्द्रमा भी है, कमल भी है और परम अद्वितीय सत्ता का प्रतीक-संकेत भी है :

सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा। भार पहार जूझ कर काँधा॥
लगे मरै गोरा के आगे। बाग न मोर धाव मुख लागे॥
जैस पतंग आगि धसि लेई। एक मुवै दूसर जिउ देई॥
टूटहिं सीस अधर धर मारै। लोटहिं कंधहिं' कंध निरारै॥

प्रबन्ध के ढाँचे में कही गई इस मार्मिक प्रेम-कविता में चरित्रों की रूपरेखा भी एक ही सीधी सरलता के अधीन नहीं है। नागमती का आरम्भिक और परवर्ती रूप ईर्ष्या, कलह, निकटता-अभिन्नता में कई बार परिवर्तित होता है। पद्मावती में परिवर्तन परिस्थिति के कारण ही है—अन्यथा वह अपने एक से विशिष्ट अद्वितीय रूप में केन्द्रित है। पद्मावती में एक स्नेह-शिशु भी जगह-जगह उभरता है। जायसी के पाठक पद्मावत को चरितकाव्य मानकर भी उसकी सन्दर्भ-बहुलता को महत्त्वपूर्ण पायेंगे। लोकसंस्कार, रीतियाँ, मायके का जीवन, विवाह, मानवीय संस्कारों-प्रवृत्तियों के अन्तर्विरोध—ये प्रसंग इस चरित काव्य का एक सन्दर्भ-संसार भी बनाते हैं। प्रबन्ध की एक माँग इतिवृत्त का संगठित निर्वाह भी है। जायसी इसके प्रति अत्यन्त सतर्क हैं। इतिवृत्त की स्वाभाविकता को छोड़े बिना ही वे उसमें दूसरा अर्थ भरते हैं :

ए रानी! मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी॥
जौ लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू॥
पुनि सासुर हम गवनब काली। कित हम कित यह सरवर पाली॥
× × ×
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न निसरै देहीं॥

विवाह के बाद रत्नसेन पद्मावती के संयोग-क्षण का मनोविज्ञान प्रसंग के लौकिक मर्म को पूरी तरह उजागर करता है पर संकेत दूर तक जाने के लिए अपनी राह इसी मर्म के भीतर पा लेता है :

अनचिह्न पिउ काँपौं मन माँहा। का मैं कहब गहब जो बाँहा॥

सुनु धनि! डर हिरदय तब ताईं। जौ लगि रहसि मिलै नहिं साईं॥

× ×

मातु पिता जो बियाहै सोई। जनम निबाह कन्त संग होई॥

लौकिक कहानी का सत्य आध्यात्मिक अभिप्राय के सत्य में किस प्रकार बदल रहा है—किस प्रकार रूपक महाकाव्य में फैलता है या महाकाव्य रूपक में सिमट आता है—यह सब एक रोचक काव्य-प्रसंग है, जो जायसी के कविस्वभाव की बनावट को सर्वोत्तम रूप में उपस्थित करता है।

'पद्मावत' का एक और मार्मिक पहलू है—धर्मनिष्ठता और धर्म-निरपेक्षता का सन्तुलन। जायसी की इस्लाम में आस्था क्षीण नहीं हुई है और हिन्दू संस्कृति का मर्म उन्हें प्राय: बाँधता है, आत्मविस्तार की प्रेरणा देता है। इसलिए कहानी के पात्रों के संघर्ष को हिन्दू-मुसलमान-संघर्ष का रूप नहीं दिया गया है। कहानी जिस तरह बढ़ती है, अलाउद्दीन की प्रभुता, विजय की अनिवार्य सम्भावना प्रकट होती जाती है। यही कहानी की नियति है। जायसी इस संघर्ष-चित्रण में कुछ और ही दिखाने की कोशिश करने लगते हैं। शायद यह दिखाने की कोशिश—कि प्रेम भौतिक पराजय में भी अपराजेय तत्त्व है। प्रेम का मायालोक एक बार नष्ट होता दिखाई देता है—सब कुछ जलकर राख हो जाता है पर दूसरे ही क्षण विजय-दर्प से ग्रस्त सत्ता को अपनी लघुता का बोध कराने लगता है। जायसी की सहानुभूति एक बड़े संसार में गठित होती है और अपने को सब ओर फैला देती है। ऐसी ही बड़ी सहानुभूति उस महान् काव्य को जन्म दे सकती है जो 'समय' और 'शाश्वत' के सम्बन्ध की बहुमुखी सम्भावनाओं का दर्पण बन सके।

५

प्रेम-दर्शन

'पद्मावत' प्रेम-काव्य है और जायसी प्रेम की तन्मयता के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। जिस विचार-प्रवाह से प्रभावित होकर उनकी काव्यानुभूति ने अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग निर्धारित किया, उसमें प्रेम को ही सार-वस्तु माना गया था। सूफी साधक विरह को ही प्रेम की कसौटी मानते आये थे। विरह में प्रेम की सच्चाई की परीक्षा भी होती थी और अनुभव के पकेपन का प्रमाण भी मिल जाता था। प्रेम की स्थिति में होना प्रिय को ही जानना नहीं था, अपने को भी नये सिरे से जानना था। 'पद्मावत' के रत्नसेन में प्रेम की पहली अनुभूति ही इतनी विकलता पैदा कर गई कि प्रेम के बाहर की दुनिया का कोई अर्थ ही शेष नहीं रहा। अनुभव से ही इस प्रेम की विकलता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था :

प्रेमघाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई॥

यह प्रेम का मार्ग एक कठिन बीहड़ मार्ग था। सबके लिए उस पर चलना कुछ आसान नहीं था। रत्नसेन के मन में विरह की चिनगी हीरामन ने सुलगा दी थी इसलिए रत्नसेन इस मार्ग की कठिनाइयों को लाँघने की क्षमता प्राप्त कर चुका था। पर कथा की बनावट का आकर्षण यह है कि प्रेम एक साथ लौकिक अलौकिक सम्बन्ध-स्तरों पर सक्रिय है। एक ओर रत्नसेन में पद्मावती के लिए जो प्रेम-विकलता पैदा हुई, वह आध्यात्मिक संकेत के अधीन है। पद्मावती के रूप के विषय में हीरामन से सुनते ही रत्नसेन बेसुध हो गया। चेतना की स्थिति वापस आयी तो विलाप करने लगा। उन्माद की सीमा तक पहुँची हुई यह प्रेम-विकलता आध्यात्मिक अनुभव-स्थिति का संकेत है। पर ठीक यहीं रत्नसेन नागमती को जिस विरह-स्थिति में छोड़ कर जा रहा है, वह लौकिक प्रेम का सन्दर्भ है। इसकी अपनी मार्मिकता को उभारने में कवि पीछे नहीं है। लौकिक दाम्पत्य की सीमा में यहाँ नागमती के प्रेम-विरह की पूर्णता-अगाधता दिखाकर जायसी ने काव्यात्मक न्याय ही किया है। उन्माद अलौकिक प्रेम के दायरे में भी है—और लौकिक

दाम्पत्य वियोग के दायरे में भी। नागमती का बावलापन पाठक की संवेदना को सीधे स्पर्श करता है :

बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर भा फिरै भँभीरी ॥

× × ×

परवत समुद अगम बिच, बीहड़ घन बन ढाँख ॥
किमि कै भेंटौ कन्त तुम्ह? ना मोहि पाँव न पाँख ॥

पर्वत समुद्र वहाँ भी बीच में आ रहे हैं—जहाँ रत्नसेन पद्मावती से मिलने जा रहा है। यहाँ भी हैं, पर नागमती रत्नसेन तक कैसे पहुँचे। एक स्त्री का अकेलापन, उसकी निरीह असहायता उसके वक्तव्य में प्रत्यक्ष है। वहाँ भी एक गुणी पक्षी हीरामन पथ की कठिनाइयाँ सुलझा रहा है। यहाँ भी एक संवेदनशील पक्षी प्रेम का सन्देश ले जा रहा है। नागमती के प्रेम-सन्देश में वह सरलता है, जो सीधे हृदय को छूती है :

मोहि भोग सौं काज न बारी। सौंहं दीठि कै चाहनहारी ॥

भोग की लालसा शेष नहीं रह गई है। नागमती केवल प्रिय को देखना चाहती है। इस निवेदन में, इस अनुरोध में प्रेम की तन्मयता, प्रगाढ़ता अपने-आप ही प्रकट है। अलौकिक प्रेम वाले प्रसंग में तो पूरा आयोजन सामने आता है—आकर्षण के सीमातीत रहस्य सामने आते हैं—निर्मम बाधाएँ सामने आती हैं—प्रयत्नपक्ष का विस्तार सामने आता है—यहाँ तक कि देवता भी इस आयोजन में भाग लेते हैं—रत्नसेन पद्मावती के मिलन मार्ग की कठिनाइयों का समाधान या हल खोजने के लिए पहल करते हैं—आगे आते हैं।

पद्मावती इस प्रतीक-कल्पना में है तो ईश्वर-सत्ता का संकेत, पर उसकी प्रेम-विकलता वियोग में भी लौकिक मानवीय संवेदना का आश्रय लेती है और संयोग में भी लौकिक दैहिक लालसाओं की उत्तेजना से सम्पन्न है। वियोग में पद्मावती के चित्त की दशा का अन्यथाकरण नहीं किया गया है और संयोग में उसकी चेष्टाएँ लौकिक आसक्ति को ही प्रमाणित करती हैं :

चतुर नारि चित अधिक चिहूँटी। जहाँ प्रेम बाढ़ै किमि छूटी ॥

वियोग में पद्मावती के चित्त की दशा ऐसी है कि नींद और सुख के क्षण सर्वथा पराए हो गये हैं। सारी कोमल वस्तुएँ—परिधान और आभरण तक जलाने वाले हो चले हैं। एक रात्रि कल्प जितनी लम्बी हो गई है। वह वीणा बजाने लगती है कि इसी तरह रात्रि का समय कट जाय, पर वीणा के संगीत से विमोहित चन्द्रमा का वाहन मृग ठहर जाता है और रात्रि और लम्बी हो जाती है। फिर सिंह का चित्र बनाने लगती है कि चन्द्रमा का मृग डर कर चलता बने। पर इससे क्या

हो पाता है। बस वह रात्रि बिताने के प्रयास में वे नींद जागती रहती है :

दहै चन्द औ चन्दन चीरु। दगध करै तन बिरह गम्भीरु॥
कलप समान रैनि तेहि बाढ़ी। तिल तिल भर जुगजुग जिमि गाढ़ी॥
गहै बीन मकु रैनि बिहाई। ससि वाहन तहँ रहै ओनाई॥
पुनि धनि सिंह उरैहै लागै। ऐसेहि बिथा रैनि सब जागै॥

यौवन का आवेग और विरह की चरम आकुलता—पद्मावती की मनोदशा प्रिय की प्रतीक्षा में कुछ इस प्रकार की हो चली है :

जोबन भर भादौ जग गंगा। लहरैं देइ समाइ न अंगा॥
परिउ अथाह, धाय। हौं जोबन उदधि गम्भीर।
तेहि चितवौं चारिहु दिसि जो गहि लावै तीर॥

प्रेम की महत्ता की घोषणा भी इस कथा-काव्य में बार-बार की गई है। प्रेम के इस महत्त्व-स्मरण से जायसी अपने लक्ष्य को पहचानते हैं :

तीनि लोक चौदह खण्ड सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छाँडि नहिं लोन किछु जो देखा मन बूझि॥

प्रेम से अधिक सुन्दर कुछ भी नहीं है। जो प्रेम की आग में जलता है, उसका अनुभव व्यर्थ नहीं जाता। प्रेम में आत्मोपलब्धि भी सम्भव है, आत्मप्रसार भी। प्रेम का कोई दूसरा उद्देश्य नहीं—वह स्वयं अपना उद्देश्य है। जायसी प्रेम की अगाधता बताने के लिए बार-बार समुद्र का बिम्ब सामने लाते हैं :

परा सो प्रेम-समुद्र अपारा। लहरहिं लहर होइ बिसँभारा॥
बिरह भौंर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीउ हिलोरा लेई॥

या प्रेम को कठिनाई बताने के लिए उसे कठिन पहाड़ बताते हैं, जिस पर चढ़ना कठिन है :

प्रेम पहार कठिन बिधि गढ़ा। सो पै चढ़ै जो सिर सौं चढ़ा॥

प्रेम के निरूपण में जायसी विरह को ही अधिक महत्त्व देते हैं। विरह भी कहीं समुद्र है, कहीं डँसने वाला सर्प, कहीं बहेलिया—जो यौवन के पक्षी पर बस घात लगाए बैठा है। विरह-प्रेम के कवि जायसी की अत्युक्तियाँ भी हृदय-प्रेरित होने के करण सहज काव्यात्मक जान पड़ती हैं। नागमती के सन्देश की गूंज दूर तक जाती है :

पिउ सो कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा ! हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, तेहिक धुवाँ हम्ह लाग ।।

'सँदेसडा' शब्द की ध्वनि कुछ अधिक मार्मिक संकेत देती है। हे भौंरे ! हे कौवे, प्रिय से यह सन्देश कहना कि वह स्त्री (जिसके लिए कोई नाम या संज्ञा अब आवश्यक नहीं रह गई) जल मरी। हमारे रंगरूप की कालिमा उसी के धुएँ का स्पर्श है। है तो केवल अत्युक्ति, पर परिस्थिति की गम्भीरता के कारण, उसका प्रभाव अत्यन्त सहज मार्मिक अभिव्यक्ति जैसा ही पड़ता है। इसी तरह के अन्य मार्मिक संकेत नागमती के वियोग प्रसंग में हैं जहाँ अत्युक्ति सहज उक्ति प्रतीत होती है :

जेहि पंखी के निअर होइ कहै विरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात ।।

प्रेम-विरह की विषम स्थिति का यह सहज मनोविज्ञान है कि मनुष्य अपनी स्थिति की तुलना कुछ समान, कुछ भिन्न परिस्थिति वालों से करता है :

चकई निसि बिछुरे दिन मिला। हौं दिन राति विरह कोकिला ।।

लोक में विरह के अनुभव-निवेदन की जैसी परम्परा है, उसकी छाया 'पद्मावत' में मिले तो आश्चर्य नहीं। रत्नसेन दिल्ली के बन्दी गृह में है। रानी पद्मावती को लगता जैसे प्रिय वहाँ पहुंच गया है जो 'निबहुरदेस' है। वहाँ जाकर कोई नहीं लौटता। सन्देश भी नहीं। वहाँ तक जाने के सारे रास्ते अगम्य हैं — बन्द हैं। घड़ी-घड़ी जी की दशा ऐसी है, कि प्राण अब गये, प्राण अब आए :

नैन डोल भरि ढारै हिये न आगि बुझाइ।
घरी-घरी जिउ आवे, घरी घरी जिउ जाइ ।।

विरह में शरीर बिखर-सा गया है :

कनक जो कन कन होइ वेहराई। पिय कहुँ ?छार समेटै आई।।
विरह पवन वह छार सरीरु। छारहि आनि मेरावहु नीरु ।।

अंग-अंग की शक्ति ने साथ छोड़ दिया है यद्यपि उस एक दिन की आशा बुझ नहीं गयी है जब प्रिय आएगा और एक नया जीवन, एक नया साहचर्य, एक नई छाया देगा :

नैन, स्रवन, रस रसना सबै खीन भए, नाइ।
कौन सो दिन जेहि भेंटि के आइ करै सुख छाँह ।।

जायसी के मर्मी अनुवादक-व्याख्याता शिरेफ़ ने जायसी के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है : "जायसी सबसे पहले कवि हैं और प्रेम की कहानी ही उनका प्रमुख वक्तव्य है"।—इसके पीछे जायसी की पूरी रचना-दृष्टि की समझ है। जायसी के काव्यमर्म से समग्र परिचय है। प्रेम-वस्तु जायसी के कृतित्व की आधार-वस्तु है। प्रेम का अनुभव जायसी की सुविधा नहीं है—कवि व्यक्तित्व की समग्र क्षमता की कसौटी है। दैहिक और देहातीत, लौकिक और लोकोत्तर प्रेम की जितनी भंगिमाएँ अकेले 'पद्मावत' में उभरती हैं, जायसी के अन्य समकालीन कवियों के प्रेमाख्यान में सम्भव नहीं—हालाँकि रूढ़ियाँ वहीं हैं—प्रबन्ध रचना का ढर्रा वही है। जायसी का प्रेम-रसायन एक बड़ी सर्जनात्मक कल्पना का अंग है।

सौन्दर्य-दर्शन

सभी प्रेमाख्यानों के कवि सौन्दर्य की कल्पना को आत्यन्तिक महत्त्व देते आए हैं। जायसी के समानधर्मा मंझन की धारणा—"तीनों लोकों में विलसित होने वाली सौन्दर्यसत्ता एक ही है"—ऐसे सभी कवियों के दृष्टिकोण को समझने में सहायक हो सकती है। सौन्दर्य की यह उच्चतर कल्पना हर कोण से देखे गए, हर स्थिति में अनुभव किए गए सौन्दर्य का समग्र संगठित वैभव है।

सौन्दर्य के लोकव्याप्त रूपों, बिम्बों, अभिप्रायों के संगटित प्रभाव की अनुभूति के आधार पर जायसी ने पद्मावती के सौन्दर्य का विधान किया है जिसकी अद्वितीयता ही सबसे पहले पाठक का ध्यान आकृष्ट करती है। पारम्परिक उपमानों के घेरे में बंधी होकर भी यह सौन्दर्य-कल्पना एक अलग प्रकार का संसार बनाती है—जहाँ सौन्दर्य अपने स्पर्श से उन वस्तुओं को भी सुन्दर बनाता है, जो सुन्दर नहीं है:

विगसा कुमुद देखि ससि रेखा। भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा॥
पावा रूप-रूप जस चहा। ससि मुख जनु दरपन होइ रहा॥

इस विशिष्टि सौन्दर्य-कल्पना से गुज़रने का अर्थ है—कुछ विशिष्ट ऐन्द्रिय संवेदनात्मक अनुभवों से गुज़रना—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द-छायाओं में एक समूचे सौन्दर्य के कलात्मक संगठन की प्रक्रिया लक्ष्य की जा सकती है:

भै उनंत पद्मावति बारी। रचि-रचि विधि **सब कला सँवारी**॥
जग **बेधा** तेहि अंग **सुबासा**। भँवर आइ लुबधे चहुँपासा॥
बेनी नाग मलयगिरि पैठी। ससि माथे होइ दूइज बैठी॥

× × ×

दसन दामिनी **कोकिल** भाखी। भौंहैं धनुख गगन लेइ राखी॥

× × ×

नवल बसंत **सँवारी** करी। होइ प्रगट जानहुँ **रस** भरी॥

जायसी के सौन्दर्यविधान के क्रम में वही-वही शब्द बार-बार आते हैं—वही रूढ़ियाँ, परिपाटीबद्ध कल्पनाएँ सामने आती हैं—अंगों के साथ जुड़ी हुई वही यादें—प्रकृतिजीवन के वही सोद्देश्य बिम्ब—पर इस दुहराने में कुछ नया करने, नया अनुभव जोड़ने की रचनात्मक व्यग्रता जायसी में बनी रहती है।

सौन्दर्य चित्रण 'पद्मावत' में दो स्थलों पर है—एक नखशिख खण्ड में—जहाँ हीरामन ही वर्णनकर्त्ता है जो पद्मावती का आत्मीय है, और उसके अद्वितीय रूप के अद्वितीय अर्थ का व्याख्याकार भी है—दूसरी बार 'पद्मावती रूप चर्चा खण्ड' में—जहाँ राघवचेतन प्रतिशोध के छल से रूप का वर्णन कर रहा है (पर है स्वयं भी रूप से बिंधा हुआ)। जायसी की कल्पना में सौन्दर्य के बिम्ब प्रायः शृंखलाबद्ध होकर आते हैं। केश का वर्णन आता है तो सघनता, कालिमा, विस्तार, मादक गन्ध, कोमलता के बिम्ब एक संगठित लय रचते हुए देखे जाते हैं :

भौंर केस, वह मालति रानी। **बिसहर लुरैं** लेहिं **अरघानी**॥
बेनी छोरि झार जौ बारा। सरग पतार होइ अँधियारा॥
कोंपर कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरें भुअंग बैसारे॥
बेधे जनौ मलयगिरि बासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा॥
धुँधरवार अलकें **विषभरी**। सँकरें पेम चहैं गिउ परी॥

पद्मावती को यहाँ मालती कहा जा रहा है—पद्मावती के केश भौंरे हैं। वही केश विषधर सर्प की तरह लहराते हैं और गन्ध लेते हैं। वह वेणी खोलकर छितराती है तो स्वर्ग से पाताल तक केवल अन्धकार छा जाता है। अर्थात् कल्पनाएँ दुहराई भी जा रही हैं। वही सर्प की कल्पना—लहरें लेने की कल्पना। अब एक विदग्ध कल्पना यह, कि शरीर रूपी मलयगिरि की गन्ध ने केश-नागों को बेध रखा है। बिंधे हुए वे वहीं लहराते हैं, अन्यत्र नहीं जा पाते। अब पर्याय-भेद का लाभ उठा कर जायसी कहते हैं कि अलकें विषभरी हैं—दूसरे शब्दों में प्रेम की शृंखलाएँ हैं जो किसी की ग्रीवा में पड़ने के लिए व्यग्र हैं। इस प्रकार जायसी का सौन्दर्य वर्णन अपने आप में पूरा तात्पर्य कथन भी है जो कहानी की गति की ओर संकेत करते हुए पाठक को वर्णन से आगे ले जाता है।

पद्मावती के आरंभिक रूप वर्णन में कौमार्य की अनोखी दीप्ति है—इस दीप्ति के कई सादृश्य बिम्ब संगठित होते चलते हैं :

बिनु सेंदुर अस जानहु दीआ। उजियर पंथ रैनि मँह कीआ॥
कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन माँह दामिनि परगसी॥

माँग की कल्पना 'उजियर पंथ' के रूप में की गई है। केशों की कालिमा ही रात्रि का अन्धकार है, जिसमें इस 'उजियर पंथ' की चमक खिची हुई है। भौंहों की वेध-

कता नेत्रों की वंकिम तरलता के साथ ही अपना प्रभाव बनाती है। भौंहें भी अपनी बनावट में अद्वितीय हैं—'उन्ह भौंहनि सरि केउ न जीता'। नेत्रों के आकर्षण की तरलता, चपलता, गतिमयता, स्फूर्ति कवि की कल्पना में इस प्रकार रूप लेती है :

नैन बाँक सरि पूज न कोऊ। मानसरोदक उथलहिं दोऊ॥
जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाहिं पल माहाँ॥

सुभर सरोवर नयन वै मानिक भरे तरंग।
आवत तीर फिरावहीं काल भौंर तेहि संग॥

'अड़ार' जैसे ठठ शब्द की व्यंजकता दूर तक जाती है। जायसी नेत्रों का वर्णन करते हुए दृष्टि के चतुर्दिक प्रभाव-व्यापार को प्रत्यक्ष करते हैं। पुतलियों को 'कालभँवर' कहते हुए वे नेत्रों की उपमा 'सुभर-सरोवर' से देते हैं।

यह सौन्दर्य-दर्शन भी लोक से लोकोत्तर की ओर उन्मुख है। पद्मावती व्यक्तिरूप में भी अतिशय सौन्दर्य में सम्पन्न है और प्रतीक-रूप में वही ईश्वर की सत्ता का संकेत है अतः सौन्दर्य के व्यापक प्रभाव का साक्ष्य देती है :

उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा ? बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहिं न गने। वै सब बान ओही के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी॥

पद्मावती की दृष्टि से सारा संसार बिंधा हुआ है। ये जो गणना से परे अनन्त नक्षत्र हैं उसी के मारे हुए बाण हैं। आगे संकेत है कि पद्मावती की बरुनियों से (जो बाणों की तरह हैं) जंगल, वन, ढाक बिद्ध हैं—यहाँ तक कि वन्य पशुओं के शरीर के रोएँ और पक्षियों के पंख उन्हीं बाणों के रूप हैं :

बरुनि-बान अस ओपहँ बेधे रन बन ढाँख।
सौहहिं बन सब रोवाँ पंखिहि तन सब पाँख॥

पद्मावती की सौन्दर्य-चर्चा में जिस चमक का बार-बार उल्लेख है, उसकी व्यंजना लोकोत्तर संकेत के अधीन है। दिपना, झलकना, कौंधना जैसी क्रियाएँ एक ही प्रतीकात्मक अभिप्राय के आसपास सार्थकता प्राप्त करती हैं :

जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी॥
दामिनि दमकि न सरवरि पूंजी। पुनि ओहि जोति और को दूजी॥

जायसी सौन्दर्य की मुद्राओं के विधान में अपनी क्षमता का प्रमाण देने के साथ ही मध्यकालीन शिल्प जगत् की स्मृतियों का बोध भी कराते हैं। उनके यहाँ कुछ कल्पनाएँ सीधे मूर्ति शिल्प से काव्य में आ गई हैं।

बैरिनि पीठि लीन्हि वह पाछे। जनु फिर चली अपछरा काछे।।

राघव चेतन का छल भी जानता है कि पद्मावती का सौन्दर्य वर्णन असम्भावना है। उसकी ओर से किया गया वर्णन अनुकरण है। जायसी के यहाँ एक यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि सौन्दर्य के लिए अक्सर 'रूप' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिससे व्यक्तित्व की एक समग्र निर्मिति का आभास मिलता है। रूपगर्विता नागमती आरम्भ में ही हीरामन से प्रश्न पूछती है :

कौन रूप तोरी रूपमनी। दहुँ हौं लोनि कि वै पदमिनी।।

'राजा सुआ संवाद खण्ड' में तोते की उक्ति है :

उअत सूर जस देखिय, चांद छपै तेहि धूप।
ऐसे सबैं जाहिं छपि पद्मावति के रूप।।

रत्नसेन को वरवेश में आते हुए देखकर सखियाँ कहती हैं —"सहसौं करा रूप विधि गढ़ा। सोने के रथ आवै चढ़ा।"

सौन्दर्य की काव्यात्मक पूर्णता के अनुभव में लोक संस्कृति, लोक व्यवहार, परिधान, आभूषण, आभरण का वैचित्र्य भी है, विविधता भी। उसकी चर्चा अलग से की जा रही है। जायसी के सौन्दर्यानुभव में ऐन्द्रिय रूपों के प्रति अधिक लगाव दिखाई देता है। यहाँ परम्परागत कल्पनाओं का दखल भी कम नहीं है। रूढ़ियाँ अत्युक्तियाँ, एक अभिव्यक्ति-पद्धति का अभ्यास बनी हुई हैं। इसके बावजूद जायसी के सौन्दर्य दर्शन में अनुभव की अद्वितीयता सर्जनात्मक कल्पना को गति देती है।

लोक-संस्कृति और लौकिकता का अतिक्रमण

जायसी की सृजनशील कल्पना को लोक-संस्कृति की धनिष्ठ पहचान से एक व्यापक आधार प्राप्त हो गया है। इसके बावजूद कि वे सूफी विचारधारा के कवि हैं, और उनकी काव्यानुभूति तथा अभिव्यक्ति की बनावट पर इसका गहरा असर है—जायसी लोक संस्कृति के रूप-रंग, व्यवहार को अपने काव्यानुभव में घुलाते चलते हैं। लोक संस्कृति की पहचान का अर्थ किन्हीं तथ्यों की सूची जुटाना नहीं है—जिसका धोखा कभी-कभी जायसी को पढ़ते हुए होता है—पर जायसी के यहां सूचनाओं से भी लोक जीवन की अनेकरूपता को प्रत्यक्ष करने की कोशिश हुई है। उस लोक संस्कृति का मानस-साक्षात्कार आवश्यक है जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से 'पद्मावत' सरीखे प्रेमाख्यानक प्रबन्ध में प्राप्त है। लोक-संस्कृति के असंख्य पक्षों या नाम-रूपों के बारे में जायसी का अनुभव व्यापक समृद्धि पा चुका था—उसे 'बहुज्ञता' कहना लोकानुभव का सरलीकरण करना होगा। लोक जीवन के ठेठ शब्दों की बड़ी पूंजी जायसी के पास है—पर इतनी ही पूंजी लोक संस्कृति का कुल मानचित्र नहीं बनाती। शब्दों में वह लोकभूमि विचारणीय है जिसमें जन्म, राग, प्रेम, विवाह, गीत-गान, लोक कथाएँ, युद्ध, स्थापत्य, जादू-टोना, आभूषण, आभरण, शृंगार, मैत्री, स्मृतियाँ, रहस्य-रसायन, ईर्ष्या, द्वेष सब एक दूसरे में गुंथे हुए हैं। पनिहारिनों का सौन्दर्य, वेश्याओं का सौन्दर्य, हाट बाजार का सौन्दर्य आनन्दोत्सव, भोज, सजावट, शृंगार, सरोवर, शतरंज, चौगान, दूतियाँ—ये सभी प्रसंग मिलाकर इस प्रेमकथानक का ऐसा संसार बनाते हैं जिस पर एक जीवित लोक संस्कृति की छाप अंकित है।

पद्मावत के आरंभिक सिंहलद्वीप-सम्बन्धी वर्णन में पनिहारिनों का, हाट-बाज़ार का और वेश्याओं का जो चित्रण है, वह लोक इतिवृत्त का हो यथार्थ है :

पानि भरैं आवहिं पनिहारी। रूप सरूप पदमिनी नारी॥
पदुमगंध तिन्ह अंग बसाहीं। भंवर लागि तिन्ह संग फिराहीं॥
लंक सिंघिनी, सारंग नैनी। हंस गामिनी कोकिल बैनी॥

पर इस सामान्य के सजीव इतिवृत्त से ही उस असामान्य, अद्वितीय सत्ता—की व्यंजना भी हो जाती है :

माथे कनक गागरी आवहिं रूप अनूप।
जेहि के अस पनिहारी सो रानी केहि रूप।

इसी क्रम में यह व्यापार-सक्रिय हाट-परिवेश भी है जिसमें रत्न-द्रव्य, आभरण-शृंगार चकित कर देने वाले हैं :

कनक हाट सब कुहकुहं लीपी। बैठ महाजन सिंघलदीपी॥

× × ×

सोन रूप भल भयउ पसारा। **धवलसिरी** पोतहिं घरबारा॥

× × ×

कोई करै बेसाहिनी, काहू केर बिकाइ।
कोई चलै लाभ सन, कोई मूर गवाइ।

हाट का ध्वन्यार्थ भी दूर तक जाता है। पर लौकिक संस्कृति के यथार्थ से कोई सोद्देश्य दूरी बना कर नहीं। 'शृंगार हाट' में जो दृश्य उभरता है, वह कुछ इस प्रकार है :

पुनि सिंगार हाट भल देसा। किये सिंगार बैठीं तहँ बेसा॥
मुख तमोल, तन चीर, कुसुंभी। कानन कनक जड़ाऊ खुंभी॥

जुआ खेलने का प्रसंग भी यहाँ है 'केत खिलार हारि तेहि पासा/हाथ झारि उठि चलहिं निरासा।' गढ़ का स्थापत्य भी लोक स्मृतियों के बाहर की चीज़ नहीं है। जायसी घोड़ों के रंगों की विविधता बताने लगते हैं तो रंगों का एक पूरा संसार कल्पना में सजीव हो उठता है। नीले, बादामी, मेंहदी के-से रंग वाले, भौंरे के रंग के, पके ताड़ के फल के-से रंग वाले और जाने कितने रंगों वाले घोड़े गतियों का सौन्दर्य रचने में पीछे नहीं हैं :

पुनि बाँधे रजवार तुरंगा। का बरनौं जस उन्ह कै रंगा।
लील समंद चाल जग जाने। हांसुल, भौंर गियाह बखाने॥
हरे, कुरंग, महुअ बहु भाँती। गरर, कोकाह, बुलाह सु पाँती॥

जायसी ने यह जानकारी किसी वर्णन संग्रह से ली हो तो आश्चर्य नहीं—पर इतिवृत्त में इसे खपा लेने के आकर्षण को सांस्कृतिक जानकारी के प्रसार का बल प्राप्त है। मानसरोदक खण्ड में सखियों के नाम फूलों के नाम वाचक हैं पर सब

सखियों की असली चिंता लोकानुभव या लोक संस्कार के औसतपन के बाहर नहीं है :

ए रानी। मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी॥
जौ लगि अहै पिता कर राजू। खेललेहु जो खेलहु आजू॥
पुनि सासुर हम गवनब काली। कित हम कित यह सरवर पाली॥
कित आवा पुनि अपने हाथा। कित मिलि कै खेलब एक साथा॥
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेंही। दारुन ससुर न निसरै देहीं॥

यह सारा प्रसंग लोकगीतों, लोकवृत्तों की स्मृति से सम्पन्न है और यदि पंक्तियों का ध्वन्यार्थ ही महत्त्वपूर्ण है तो कहा जा सकता है कि ध्वन्यार्थ की विशिष्टता के लिए धार्मिक साहित्य की परंपरा में इसी प्रकार की वास्तव-संवेदना पहले भी स्थान प्राप्त करती रही है।

रत्नसेन-पद्मावती के विवाह का जो मंडप इस कथानक में रचा गया है, वह लोकजीवन की रंगप्रेरणा के बाहर नहीं है :

रचि-रचि मानिक माँडव छावा। औ भुइ रात बिछाह बिछावा॥
चंदन खांभ रच बहु भाँती। मानिक दिया बरहिं दिन राती॥

'भेंट खण्ड' में संयोगपूर्व का वह समस्त आयोजन है जो केवल लोककाव्य या लोक आख्यान में कहीं-कहीं उभरता है। साड़ी, लहँगा, ओढ़नी, चोली, कंगन, पत्रावली-रचना, चंदन चीर, बहूँठा, टाँड, अँगूठी, खूँट, खुम्भी, चूड़ा, पासे का खेल, सात का दाँव, आठ का दाँव—इन्हें मिलाकर क्या कोई लोकचित्र बनता है। लोक संस्कृति के प्रति कवि की यह उत्सुकता या आसक्ति क्या एक रागात्मक लगाव की सूचना नहीं देती। लोक सौन्दर्य-वस्तु का निषेध जायसी के यहाँ नहीं है—ध्यान देने की चीज यह है। लोकोत्तर जीवन मर्म की ओर जाने के पहले कवि ने लौकिक जीवन-मर्म की सक्रिय चेतना प्रमाणित की है। अपने ही विवाह के समय पद्मावती अपनी सखियों के साथ वर देखने की उत्कंठा से महल के ऊपरी हिस्से में जो चली गयी है, वह सर्वथा लोक जीवन का प्रसंग है :

पद्मावति धौराहर चढ़ी। दहुँ कस रवि जेहि कहँ ससि चढ़ी॥

इस घटना के पीछे गीतगान का कोलाहल है—'साजा राजा बाजन बाजे'। हर ओर प्रकाश की चकाचौंध है। मंगलाचार की ध्वनि से वातावरण व्याप्त है। बारात का प्रसंग जायसी लोक से ही चुनते हैं :

आइ बजावति बैठि बराता। पान फूल सेंदुर सब राता॥
जहँ सोने कर चित्तरसारी। लेइ बरात सब तहाँ उतारी॥
माझ सिंघासन पाटसँवारा। दूलह आनि तहाँ बैसारा॥

पाँति-पाँति सब बैठे भाँति-भाँति जेवनार।
कनक पत्र दोनन्ह तर कनक पत्र पनवार॥

लौकिकता का अतिक्रमण जायसी के कथ्य का है ज़रूरी हिस्सा—पर जायसी की विशिष्टता इस कथा-परिवेश की वह बुनावट है जो लोक संस्कृति के अनुभवों तथा प्रत्यक्षों के भीतर रूप लेती है।

लौकिक अलौकिक तात्पर्यों का जो सम्बन्ध जायसी की कल्पना निर्धारित करती है, उसे हम रसानुभूति और रहस्यानुभूति का सम्बन्ध कह सकते हैं। इसके ज्ञानात्मक विश्लेषण की ज़रूरत नहीं है। अब सुबह और शाम के मेघखण्ड उस एक पद्मावती के रंग में रंगे हुए हैं—इस संकेत में क्या प्रत्यक्ष और परोक्ष के सम्बन्धभाव की व्यंजना नहीं है। यह एक प्रकार का सौन्दर्यमूलक रहस्याभास है। जायसी उस एक अद्वितीय को बार-बार सामने लाना चाहते हैं जिसे देखने के लिए सृष्टि का हर छोर उत्सुक है :

बसहि पंखि बोलहिं बहु भाखा। करहु हुलास देखिकै साखा॥
भोर होत बोलहिं चुहचुही। बोलहिं पाँडुक "एकै तुही"॥

यही लोकोत्तरता का व्यंग्य है जिसकी ओर कथा की गति बार-बार घूम जाती है :

देखि एक कोतुक हौं रहा। रहा अँतरपट पै नहीं अहा॥
× × ×
सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरसन आपुहि देखा॥

उच्च कोटि की भावुकता से सम्पन्न होकर ही जायसी इस 'रमणीय सुंदर अद्वैती रहस्यवाद' (रामचन्द्र शुक्ल) को काव्यात्मक प्रतिष्ठा दे सके हैं। जहाँ दार्शनिक धारणाएँ—तंत्र-रसायन-कामशास्त्रीय संख्याओं की परिभाषिकता-साधनाओं के गूढ़ संकेत प्रमुखता पा लेते हैं वहाँ कविता की लोकधर्मिता बाधित होती है। ये बाधाएँ जायसी के यहाँ हैं—यह अच्छा है कि उनके निराकरण की दिशाएँ भी यहीं खुलती हैं।

लोक-भाषा में सम्भव होने वाली कविता

जायसी की श्रेष्ठ कविता को लोकभाषा में सम्भव होते हुए देखकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। नागर आभिजात्य की कविता जब परिष्कार के क्रम में ही आगे अपनी रूढ़ियाँ बना लेती है, तो उसे लोकजीवन और लोकभाषा के स्पर्श से ही नई चमक प्राप्त होती है। लोकभाषा में जो परिष्कार से पहले का अनगढ़पन होता है वह प्रायः कविता को गुणात्मक समृद्धि देने में सहायक होता है। परम्परा और नवीनता के तनाव में कविता नयी सार्थकता उपलब्ध करती है। धार्मिक विश्वासों के कवि को जब हम ठेठ लोकानुभव में विश्वासों के ऊपरी भेद को विचलित करते हुए देखते हैं, तब हमें उसकी काव्य-सम्भावनाओं का पता लगता है। अनगढ़पन में माधुर्य की प्रतिष्ठा करके जायसी ने अपनी लोक-दृष्टि के साथ कवि दृष्टि का प्रमाण भी दिया है। दूर के संकेत भी लोकभाषा के घनिष्ठ रचाव में एक नई विशिष्टता पा लेते हैं। प्रेमकथानक की रसात्मकता भी भाषा के इस प्रीतिकर लोकमाधुर्य को प्रत्यक्ष करने में सहायक हुई है। कविता की भाषा यहाँ निरन्तर घटित होते हुए आवेगों के बीच रचनात्मकता प्राप्त करती है। इसका यह अर्थ नहीं कि जायसी की कविता का सहज प्रवाह, उसकी सहज-स्फूर्ति, आवेगमयता कहीं अवरुद्ध नहीं है। जहाँ लोक और लोकोत्तर का सन्तुलन बाह्य धारणात्मकता तक सीमित है, वहाँ कविता का माधुर्य, कविता की नवीनता ग़ायब है। धारणाओं और रूढ़ प्रतीकों का भार ऐसी स्थिति में खटकने लगगता है। पर जायसी की प्रमुख कृति 'पद्मावत' में ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं—दूसरी ओर लोकभाषा में सम्भव कविता की गुणात्मक सम्पन्नता यहाँ कथा के पूरे रचाव में, कविता की समग्र बुनावट में व्याप्त है। इस लिए जायसी की रचनाशीलता को इस आधार पर देखना आवश्यक हो जाता है—और इस कोशिश में कवि के आत्मविश्वास का स्मरण भी जरूरी हो जाता है। लोकभाषा में काव्यानुभूति की इस बनावट के पीछे कवि की संवेदनात्मक कोशिश का यह एहसास जरूरी है :

जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई॥

भाषा के माधुर्य की जड़े यहीं हैं—इसी काव्य-प्रक्रिया के संकेत में। पाठक पूरे कथामर्म से गुज़रते हुए जायसी की कविता की भाषाई क्षमता से गुज़रता है।

अलंकृति इस भाषा में है—वह परम्परागत भी है—पहले के आलंकारिक कथनों, रूढ़ियों की स्मृति बार-बार उभरती है, पर जायसी का एक ख़ास अपनापन भी इस प्रकार के आलंकारिक विधान में देखा जा सकता है। वह अपनापन सादृश्य-सम्बन्धों की पकड़ में भी कार्यरत है और विरोधी वस्तुओं के संगठन में भी अपनी पहचान कराता है। वही कवि की आलंकारिक योजना के पीछे काम करने वाला निजी तर्क—ख़ास चीज़ है।

सादृश्य-कल्पना कवि किस लिए कर रहा है—इस प्रश्न का उत्तर ही निर्णायक हो सकता है कि कहाँ यह कल्पना कविता के लिए अर्थोपयोगी सिद्ध हो रही है और कहाँ कवि-कर्म में रुकावट पैदा कर रही है या कविता को चमत्कार-सीमित कर रही है। प्रकृति से या मानव-व्यापार से जो कल्पनाएँ सादृश्य-विधान के लिए चुनी जाती हैं, यदि वे भाव संवेदना को उत्तेजित कर पाती हैं तो समझना चाहिए कि सादृश्य इकहरा, सामान्य-चमत्कारप्रेरित या युक्तिपरक ही नहीं है। कुछ कल्पनाओं की इस लोकभाषा में सम्भव होने वाली काव्यात्मक बनावट पर ध्यान दें तो जायसी के सादृश्य-सम्बन्ध रचने वाले विशिष्ट कवि-स्वभाव का परिचय मिल सकेगा :

कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन माँह दामिनी परगसी॥

× × ×

मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी।

× × ×

देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हिलास पुरइनि होइ छावा॥

अलग-अलग इन कल्पनाओं की प्रकृति के बारे में सोचना कैसा लगता है। पहली कल्पना है—पद्मावती की माँग बिना सिन्दूर के ऐसी लग रही है जैसे कंचन की रेखा कसौटी पर कसी हो। पर कथन पूरा नहीं हुआ। अब एक और सम्भावना की ओर कवि पाठक का ध्यान खींचता है—मानो बादलों में बिजली प्रकाशित हो। कल्पना एक ओर खनिज वस्तुओं के बीच सादृश्य-सम्बन्ध खोजती है दूसरी ओर अत्यन्त सहज-सुलभ प्रकृति-व्यापार के बीच। यह क्या अकारण है। नागर चित्त और लोकचित्त के संगठन, सामंजस्य की प्रेरणा से सम्भव होने वाली विशिष्टता तो नहीं है। दूसरी कल्पना नागमती की असहायता का बयान है। वहाँ रत्न-सरीखी खनिज वस्तुएँ या नागर समृद्धि और वैभव के चिह्न सामने नहीं है। वहाँ साम्य के लिए क्या-क्या कल्पनाएँ हैं—मघा नक्षत्र में धाराधार वर्षा हो रही है—नागमती की आँखें ओलती की तरह टपक रही हैं—रिस रिस कर टपक रही

हैं। एक अन्य शब्द-चित्र में नागमती ऐसे जल रही है जैसे दिया जलता है। चुपचाप जलने के अतिरिक्त कोई व्यंग्य संकेत नहीं है। लोक-व्यापरा में सादृश्य सम्बन्ध के चुनाव की मार्मिकता पहचानने के लिए कुछ अन्य उदाहरण लिये जायँ :

नैन चुवहिं जस महवट नीरू। तोहि विनु अंग लाग सर चीरू ॥
× × ×
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै विहराई ॥
बिहरत हिया करहु, पिउ टेका। **दीठि दवँगरा** मेरेवहु एका ॥

'महवट नीरू' का अर्थ है—माघ महीने की वर्षा। इसे लोकभाषा में 'माँहुट' भी कहते हैं। प्रकृति के व्यापार-संकेत से परिस्थिति की सम्यक् व्यंजना सम्भव हो गई है। 'दीठि दवँगरा' के संकेत-चित्र में सादृश्य कल्पना को संश्लिष्ट रचाव प्राप्त है। दवँगरा वर्षा के पहले जल का संकेत है—वह सूखे हुए सरोवर की दरारों को जिस तरह भर देता है, कल्पना की गयी है कि प्रिय की दृष्टि पड़ते ही सूखे हुए हृदय की दरारें भर जायेंगी। दृष्टि के कोमल स्पर्श में यह आश्वासन पहले से ही नागमती को प्राप्त है।

'देखि मानसर रूप सुहावा/हिय हुलास पुरइनि होइ छावा'—कल्पना में एक भिन्न प्रकार का लालित्य है। सरोवर पद्मावती के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर बार-बार उल्लसित हो रहा है—यह उल्लास ही है जो कमलों के मुक्त खिलने के व्यापार में प्रकट हो रहा है। कल्पना सादृश्यमूलक ही है पर उसकी गति कुछ भिन्न है।

सादृश्य-सम्बन्ध में नई कल्पना के उपयोग से जो नई अर्थवत्ता विकसित होती है, वही कविता के काम की चीज़ है। टेसू के विशाल वन और गेरुए वस्त्रधारी योगियों के समूह के बीच साम्य की इस कल्पना को देखें :

चला कटक जोगिन्ह कर, कै गेरुअ सब भेषु।
कोस बीस चारिहुँ दिसि जानहुं फूला टेसु ॥

नवीनता के पीछे भाव सम्पन्नता का बल हो तो सादृश्य की कल्पना और गहरा असर डालती है। एक अनुभव-प्रसंग कविता की बनावट में किस प्रकार प्रकृति व्यापार और मानवीय स्थिति में सादृश्य विधान को संगठित करता है—इसे देखना एक विशिष्ट मार्मिक अनुभव है। रत्नसेन चित्तौड़ लौट रहा है—लम्बे प्रवास के बाद। नागमती को इसकी सूचना पहले से ही किसी अदृश्य शक्ति ने दे दी है। उसके शरीर प्रान्त और मनोदेश में क्या परिवर्तन हो रहे हैं—यह अपने आप में एक घटना है। नागिन जैसी मरी हुई त्वचा प्राणवत्ता के वापस आने से

सचमुच की जीवित त्वचा बन गई है। दुःख ऐसे छूट गया है जैसे केंचुल छूट जाती है। जायसी विभिन्न वस्तुओं-स्थितियों में सादृश्य कल्पना का उपयोग करते हुए लिखते हैं :

जसि भुई दहि असाढ़ पलुहाई । परहिं बूंद औ सोंधि बसाई ।।
ओहि भाँति पलुही सुख बारी । उठी करिल नइ कोंप सँवारी ।।

आगमन की सूचना और वर्षा की पहली बूंद, प्रसन्नता का अपूर्व अनुभव और सुविकसित बाटिका, आशा का संचार और नये अंकुर का उद्भव—यह धर्म-साम्य या प्रभाव-साम्य हार्दिकता जगाने वाला है। एक मनोवैज्ञानिक समझ भी इस व्यापार-साम्य के पीछे कार्यरत है। विरह के लिए असूझ बन या अथाह लहराते समुद्र की कल्पना इसी प्रकार के प्रभावसाम्य को रूप देती है :

परबत समुद अगम बिच, बीहड़ घन बन ढाँख।
किमि कै भेंटौं कन्त तुम्ह ? ना मोहि पाँव न पाँख ।।

कविता की स्वाभाविकता का यह एक अपूर्व मार्मिक उदाहरण है। इस कथन में पाठक को वस्तुकथन का संतोष भी मिल सकता है और संकेत का लाभ भी।

परिस्थितियों के विरोध में जो अलंकार-सम्भावना या काव्य-सम्भावना जन्म लेती है, उसे अनिवार्यतः स्वाभाविकता का विरोध नहीं समझना चाहिए। जायसी के यहाँ विरोधवक्रता भी भावात्मक साक्ष्य के कारण स्वाभाविक प्रतीत होती है :

धनि सूखै भर भादौं माहाँ।
× × ×
कातिक सरद चन्द उजियारी/जग सीतल, हौं बिरहै जारी
× × ×
तन मन सेज करै अगिदाहू/सब कहँ चंद, भएउ मोहि राहू

आधुनिक काव्य-बिम्ब की धारणाओं को सामने रख कर जायसी को बिम्बों का कवि कहना कठिन है। मध्यकालीन सम्वेदना के परिप्रेक्ष्य में आलंकारिक चित्रों की बात जरूर उठती है। जायसी के आलंकारिक बिम्बों का अध्ययन इसी सीमा में किया जाना चाहिए। उनके यहाँ या तो इस आशय से रचे गए आलंकारिक विम्ब हैं कि प्रस्तुत अप्रस्तुत के बीच का सदृश्यमूलक या विरोधमूलक सम्बन्ध उभर कर सामने आ जाय—या फिर कथा-विम्ब हैं। ऐसे प्रयोगों में जायसी की भाषा जीवन के प्रत्यक्ष दर्शन के निकट आती है—मानव व्यापारों से जुड़ती है—प्रकृति-रूपों को मानवीय अनुभव का हिस्सा बनाती है। समुद्र के बिम्ब जायसी के यहाँ बहुत हैं—हालाँकि वे संकेतधर्मी हैं। उनका व्यंग्यार्थ कहीं और निवास

करता है—समुद्र से अधिक यह समुद्र में डूबते हुए व्यक्ति का बिम्ब है :

परा सो प्रेम-समुद्र अपारा। लहरहिं लहर होइ बिसँभारा ॥
बिरह भौंर होइ भाँवरि देई। खिनखिन जीउ हिलोरा लेई ॥
खिनहिं उसास बूड़ि जिउ जाई। खिनहिं उठै निसरै बौराई ॥
खिनहिं पीत खिन होइ मुख सेता। खिनहिं चेत, खिन होइ अचेता ॥

इसी प्रकार के वानस्पतिक बिम्ब या पशु-पक्षी के बिम्ब संकेत-धर्म से प्रेरित हैं :

सरग सीस, धर धरती, हिया सो पेम समुंद।
नैन कौड़िया होइ रहे, लेइ लेइ उठहिं सो बुंद ॥

कौड़िया कौड़िल्ला नाम का पक्षी है जो पानी में से मछली पकड़कर फिर ऊपर उड़ने लगता है। प्रकृति व्यापार से गहरे अध्ययन से ही कवि को ऐसी अछूती कल्पना का लाभ प्राप्त होता है। लोक-जीवन-व्यवहार से चुने गये बिम्बों में कुछ और ही ताज़गी है। ऐसे प्रयोगों को दृष्टान्त-बिम्ब की संज्ञा दे सकते हैं :

मुहम्मद जीवन जल भरन रहट-घरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी, जनम गा बीति ॥

जायसी के कथा-बिम्बों का स्वभाव भी इसी प्रकार के बिम्ब-धर्म के निकट है :

पद्मावति कहँ दुख तस बीता। जस अशोक बीरो तर सीता ॥

दर्पण, चित्रकारी, कागज की गुड़िया, काठ के घोड़े, रसायन, रत्नकल्प, मरजिया (गोताखोर), कुम्हार के चाक, शतरंज और चौगान, खाद्य वस्तुएँ, अस्त्र-शस्त्र आदि के बिम्ब जायसी के प्रत्यक्ष अनुभव का विस्तार सूचित करते हैं।

भावोत्तेजना, तीव्रता, नवीनता, अनुकूलता, अनुभूति-निर्भरता काव्य-बिम्ब के गुण बताये गये हैं। निम्नलिखित उदाहरण में एक ही झंकृति भीतर बाहर सब कहीं एक प्रभावी ध्वनि-बिम्ब गठित करती है। विरहजन्य कृशता नसों के ताँत बनने की प्रक्रिया को अनुभव की विशिष्ट एकाग्रता में रचती है। इस काल्पनिक मूर्त्तता का बिम्ब-स्थिति से सहज सम्बन्ध है :

हाड़ भये सब किंगरी नसैं भईं सब तांति ॥
रोंव रोंव तें धुनि उठै कही बिथा केहि भाँति ॥

ऐन्द्रिय सम्वेदनाओं के बिम्ब—(रूप, रंग, स्पर्श, शब्द, गन्ध आदि के बिम्ब) जायसी के यहाँ बड़ी संख्या में हैं। रंगों के इस बिम्ब-संयोजन में प्रतीकोपयोगी संकेत लक्ष्य किये जा सकते हैं :

गा अँधियार रैन मसि छूटी। भा भिनसार किरन रवि फूटी ।।

स्पर्श बिम्ब में भी संकेतावृत्ति गहरी है—'जनहुँ छाँह महँ धूप देखाई/तैस झारि लागै जो आई।'

जायसी के कुछ प्रतीक शब्दों की पारिभाषिक एकदेशीयता लगभग निश्चित कर दी गई है। और वे इतने रूढ़ में आते हैं कि उनमें कोई सृजनात्मक आवेग या उत्तेजना नहीं दिखाई देती है। सूर्य, चन्द, पाँच कोतवार, नीर, खीर, दुरपदी, सत-खण्ड, पान, सुपारी, चून ऐसे ही स्थिरीकृत शब्द हैं। संख्याओं की कूट प्रतीकात्मकता पहले से ही निर्धारित है। जैसे नौ/दस—

नौ पौरी पर दसँव दुवारा।
तेहि पर बाज राज धरियारा ।।

जहाँ कविता इन रूढ़ियों से गुजरती है, अधिक-से-अधिक एक गूढ़ साधनात्मक अभिप्राय पाठक के हाथ लगता है। ये स्थल काव्याभास के उदाहरण हैं, प्रकृत-मार्मिक कविता के नहीं। पर कविता की पूरी बनावट देखने के लिए उपर्युक्त अट-पटे स्थलों को भी देख लेने में कोई हानि नहीं है। विडम्बना यह कि ये अटपटे स्थल लोकभाषा के अपने मर्म को भी क्षीण करते हैं। सहज अनुभूति वाली कविता ही अनगढ़पन और माधुर्य का वह मार्मिक संघटन निर्मित कर सकी है जिसपर जायसी का कवि-स्वभाव अपनी पूरी पहचान के साथ अंकित है।

अन्य रचनाएँ : दार्शनिक विचारों की अटपटी कविता

'पद्मावत'—जायसी की विशिष्ट प्रबन्ध रचना है, जिसमें कविता अपने समग्र संगठन को उपलब्ध कर सकी है। काव्यात्मक पूर्णता के इस अनुभव से गुज़रने वाले पाठक की स्वाभाविक जिज्ञासा हो सकती है कि अन्य रचनाओं में जायसी की काव्य-चिन्ता किस कोटि की है और उसका रचनात्मक गठन किस ढंग का है। है तो वह सब मिलकर दार्शनिक विचारों की अटपटी कविता ही—जिसे हम कभी अनुभव-रुझान और कभी अभिव्यक्ति के भेद से अलग अलग कृतियों की बनावट में देख सकते हैं। कवि के अनुभव और सोच का अपना ढंग ज़रूर इन कम महत्त्व-पूर्ण रचनाओं में भी प्रकट है।

'कहरानामा' की अन्योक्तिमूलकता अनुभव का जो संसार बनाती है, उसमें मध्यकालीन सन्तों की आगे-पीछे की बहुत-सी यादें हैं। कहार की स्वभाववृत्ति से मछली मारने, डोली उठाने, नाचने गाने जैसे व्यवहार सन्दर्भ चुने गए हैं और उन्हीं में कविता का रूपक रचा गया है। जायसी ने 'कहरानामा' के अन्त में इस रचना की सार-वस्तु का उल्लेख किया है :

कहेउ मुहम्मद कहरानामा है याते जग स्वारथ रे
पढ़ै सुनै समुझै, समुझावै, होइ सुफल परमारथ रे
वेद पुरान, भागवत-गीता, तंत्र मंत्र सब जानहु रे
यामे सार **इस्क-पथ** जानेहु, अउर कहावत मानेहु रे

प्रेम के मार्ग को ही महत्त्वपूर्ण बताकर जायसी सूफी दर्शन के अनुरूप जीवन को देखने की माँग करते हैं। इस कृति में कविता के नाम पर कुछ विचार हैं, धारणाएँ हैं, दार्शनिक अनुभव हैं। छन्द की नवीनता ज़रूर यहाँ ध्यान देने की चीज़ है।

निर्गुण सन्तों जैसी कथन विधि 'कहरानामा' में लक्ष्य की जा सकती है पर जायसी का अपनापन यहाँ अनुपस्थित नहीं है। कुछ नहीं तो ठेठ शब्दों के तद्भव रचाव में जायसी की विशेषताएँ ध्यान आकृष्ट करती हैं :

ऊभि-बाँह करि ठाढ़ पुकारै, केवट वेगि न आवसि रे।
कहैं लोग यह मुरुख अजाना, बिनु **गथ** चढ़ै न पावसि रे॥

× × ×

तात बन्धु मीत सँघाती, सो न मिलै जेहि चाहै रे
दरबि-हीन मन **झुरै** अकेला, को लै तेहि निरवाहै रे॥

मछली मारने से सम्बद्ध कितने ही व्यापारगत शब्द, मछलियों के नाम (पहिना, सींग, मंगुरी), मछलियों के रूप (कोठवारी चाल्हा अर्थात् हृष्ट-पुष्ट मछली), गतियाँ, क्रियाएँ (चुभकना, ढूँकना)—यहाँ कविता में आकर यह प्रमाणित करने में समर्थ हैं कि जायसी लोक के अनुभव के कवि हैं। मायके ससुराल के जीवन का अन्तर बताकर जायसी वैसे ही दार्शनिक संकेत देने लगते हैं जैसे पद्मावती में दिए गए हैं। यह अनुभव-बिम्ब भी साधना पद्धति से प्रभावित हैं :

कहैं महंमद सोई **सुहागिनि**, जो अैसे पियरावै रे।
नैहर केरि होई गुनवन्ती, सो **ससुरे सुख** पावै रे।
सुनहु बात सब सखी-संघातिनि, ब्याह चार सब काहू रे
यदि **नैहर** दिन-चारिक रहना **ससुरे जनम निबाहू** रे

यहाँ 'हिन्दू-तुरुक' के लिए एक साथ वैसा सम्बोधन भी है, जैसा हम कबीर की कविता में देखते हैं—'हिन्दू तुरुक दोऊ हम देखहु, जो बालक सोइ ब्याहा रे'। 'कहरानामा' में तद्भव शब्दों की काव्यात्मक ध्वनि का सार्थक उपयोग है।

'मसलनामा' के मसले भी आध्यात्मिक संकेतों को कविता के ढाँचे में एक नया रूप देते हैं। प्रेम की विकलता, रूप की खोज के साथ जीवन की असारता का अनुभव भी मसलों में व्यक्त है :

निहचै तोर रूप मैं हेरा।
आवइ आव कि जाइअ वेरा॥

(रूप की खोज)

जीव न गर्वन भूलेहि, नेह-नाह को राख।
चार दिना की चाँदनी, फिरि अँधियारा पाख॥

(नश्वरता का अनुभव)

जायसी 'मसलानामा' में भी प्रेम के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। साथ ही अहंकार के विलय को प्रेमपूर्ण स्वीकृति के लिए ज़रूरी बताते हैं। एक रोचक उदाहरण में जायसी ने अहंभाव की तुलना उस 'तरुणी सास' से की है जो अपने ही शृंगार में डूबी रहती है और 'बहू' को शृंगार के लिए अवसर नहीं देती। कहना न होगा कि

बहू यहाँ जीवात्मा ही है जो अहंकार की बाधा से प्रिय तक नहीं जा पाता :

बुद्धि विद्या कें कटक मों
है 'मैं' का विस्तार।
जेहि घर सास तरुनिया
बहुआ कौन सिंगार!

यहाँ तरुणी सास के व्यवहार का संकेत भी लोक के प्रत्यक्ष अनुभव का उदाहरण है। बहुत-सी उक्तियाँ यहाँ कबीर जैसे सीधे खरे कथनों का स्मरण कराती हैं :

प्रेम-डगर का आपु ते जाई
भूले बाँभन गाई खाई
करै पाप औ पोथी सोचे
नाक कटाइ पटोरे पोछै

'अखरावट' ककहरा शैली पर लिखी गई रचना है जिसकी परंपरा अपभ्रंश के पुराने प्रयोगों से कबीर तथा अन्य सन्तों के काव्य-प्रयोगों तक मिलती है। 'अखरावट' में जायसी ने सृष्टि के उद्भव-रहस्य को अपने विश्वासों के आधार पर कहने की कोशिश की है। एक सूफी स्वभाव जिस प्रकार परमसत्ता की ज्योति की कल्पना करता है या उसकी संज्ञा को अपने समग्र व्यक्तित्व में अनुभव करता है, इसकी झलक 'अखरावट' में देखी जा सकती है। सूफियों की चिन्ता-धारा और योगियों के अभिप्राय एक साथ इस काव्यात्मक वक्तव्य में प्राप्त होते हैं :

बुंदहि समुद समान, यह अचरज कासों कहौं?
जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आपु महँ॥

एक ओर इस्लाम के अनुसार 'पुले सरात' का उल्लेख है—जो पापियों के लिए तो बाल बराबर पतला हो जाता है और धर्मनिष्ठ जनों के लिए प्रशस्त पथ का रूप ले लेता है, दूसरी ओर योगियों के साधना-चक्र का संकेत है :

नाभिकँवल तर नारद लिए पाँच कोटवार
नवौं दुआरि फिरै नित दसईं कर रखवार
देखहु कौतुक आइ रूख समाना बीज महँ

पर यह कोई नया आश्चर्य नहीं है! जायसी इस प्रकार का सन्तुलन पद्मावत-सरीखे बड़े काव्य में बिठा सके हैं और पाठक इस विशेषता को उनका कवि-

स्वभाव मानकर सन्तुष्ट हो सकते हैं। प्रेम समुद्र की अगाधता का उल्लेख यहाँ भी है :

प्रेम समुंद सौ अति अवगाहा। बूड़ै जगत न पावै थाहा॥

तुलसीदास के कई प्रसिद्ध रूपक 'अखरावट' में पहले ही मौजूद है। 'भा मन मथन करै तन खीरु / दुहै सोइ जो आपु अहीरु / पाँचौ भूत आतनहिं कारै / दरब गरब करसी कै जारै/ × × माखन मूल उठै लेइ जोती / समुद माँह जस उलथै मोती'/ × × मन जस टेक, प्रेम जस दीया / आसु तेल, दम बाती कीया'। बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से सृष्टि और सृष्टा के सम्बन्ध की व्याख्या जायसी का प्रिय विषय है :

खा खेलन औ खेल पसारा। कठिन खेल औ खेलनहारा॥
आपुहि आपुहि चाह देखावा। आदम रूप भेष धरि आवा॥
× × ×
कै दरपन अस रचा बिसेखा। आपन दरस आप महँ देखा॥
जो यह खोज आप महँ कीन्हा। तेइ आपुहि खोजा, सब चीन्हा॥

ये धारणाएँ 'आखिरी कलाम' में भी दुहराई गई हैं—'सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुन दरसन आपुहि देखा।' 'आखिरी कलाम' में कविता नहीं है, क्योंकि इसकी रचना के पीछे एक भिन्न प्रकार का उद्देश्य है। न्याय के अन्तिम दिन की कल्पना सामने लाकर मनुष्य को एक धार्मिक जीवन की ओर उन्मुख करने प्रयास किया गया है। इस वर्णन में जो रहस्यमयता है, वह कुरान जैसे धार्मिक स्रोतों से ही ली गयी है। अन्तिम दिन के पहले के चालीस दिनों में केवल वर्षा होती रहेगी—जैसे संकेत पारम्परिक धार्मिक विश्वास के अधीन हैं। अन्तिम दृश्य के वर्णन में सुखों (स्वर्ग में घोड़े, सुन्दर वस्त्र और आभूषण, स्वादिष्ट खाद्य तथा पेय वस्तुएँ, हूरें आदि) की ज़िन्दगी के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तः साक्ष्य भी है। पर कविता नहीं है। एक विशुद्ध धार्मिक इतिवृत्त के ढाँचे में वह सम्भव भी नहीं है। 'चित्ररेखा' में ज़रूर जायसी की कल्पना कविता को कहीं-कहीं संभव बनाती है। यह एक सर्गविहीन खण्ड काव्य है, जिसकी कथा लोक प्रचलित आख्यान पर आधारित है। 'चित्ररेखा' भी प्रेमकाव्य में समासोक्ति जैसी रचना है। अनुमानतः यह जायसी की वृद्धावस्था की कविता है और कवि को भी इसका अनुभव हो रहा है कि यह साधारण ढाँचे की कविता है। यह विनम्रता अकारण नहीं है :

हाथ पियाला साथ सुराही। पेम प्रीति लइ ओर निबाही॥
बुधि खोई औ लाज गँवाई। अजहूँ अइस धरी सरिकाई॥

इस प्रेमकाव्य की कथा साधारण चमत्कार के ही आस-पास कही गई है। कथा की

बनावट में कविता का किस प्रकार का उपयोग किया गया है, देख कर जायसी की उपर्युक्त सफाई का अर्थ लगाया जा सकता है। 'चित्ररेखा' ही 'पद्मावत' के बाद जायसी की ऐसी रचना है जिसमें एक पूरी प्रेम-कहानी कही गई है। कहानी इस प्रकार है :

गोमती नदी के किनारे चन्द्रपुर नगर था। वहाँ का राजा था चन्द्रभानु। चन्दुपुर की स्त्रियाँ अप्सराओं जैसी सुन्दर थीं। नगर का स्थापत्य वैभव का ही प्रमाण था। राजा के महल में सात सौ रानियाँ थीं—सभी रूप से सम्पन्न। उनमें पट्टमहिषी रूपरेखा ने एक परम रूपवती बालिका को जन्म दिया। ज्योतिषी आये और उसका नामकरण किया—चित्ररेखा। वह निष्कलंक चन्द्रमा के समान उत्पन्न हुई थी। कहा गया था कि वह कन्नौज की रानी होगी। क्रमशः उसके रूप और गुण में समृद्धि आती गई। सातवें वर्ष में ही वह चित्रशाला में रुचि लेने लगी। नवें वर्ष तक आते-आते उसके रूप की छटा निखर चुकी थी। दसवें वर्ष में उसके मुख की कान्ति पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसी हो गई। उसके केश सर्प और भ्रमर के समान काले थे। नेत्र खंजन पक्षी के सदृश—भौंहें धनुष जैसी—वरुनियाँ बाणों के समान बेधक। जब चित्ररेखा विवाह योग्य समझी गई राजा चन्द्रभानु ने ब्राह्मणों को विभिन्न दिशाओं में वर की खोज के लिए भेजा। नियति की विडम्बना यह कि वे अन्ततः सिंहद के राजा सिंघदेव के वहाँ पहुँचे और वहीं बरोक (बरच्छा) कर दिया। राजा सिंघदेव के पुत्र के कुबड़ेपन को उन्होंने ऐश्वर्य के आगे कोई बाधा नहीं माना। कहीं यह भी विचार उनके मन में था कि किसी सुन्दर वर को दिखा देंगे— फिर विवाह के बाद देखा जायेगा। पुरोहित ने स्वस्ति वचन के बाद तिलक कर दिया। अब चन्द्रभानु ने पण्डितों को आमन्त्रित किया कि वे विवाह लग्न पर विचार करें। पण्डितों ने अपनी गणना करके बताया—चन्द्रमा और राहु का योग है अतः विवाह सम्भव नहीं। कवि यहाँ अपनी ओर से कहता है—आगे वह हुआ जो ज्योतिष की पोथियों में अलिखित था। कन्नोज के ऐश्वर्यशाली राजा कल्यानसिंह के पास अपार वैभव था पर एक पुत्र ही नहीं था जो वंश की परम्परा को आगे बढ़ाता। उसके यहाँ बहुत तप-योग करने के बाद एक पुत्र ने जन्म लिया। वह बत्तीसों लक्षणों वाला परम भाग्यशाली बताया गया। उसे नाम दिया गया प्रीतम कुँवर। पर यह दुर्भाग्य भी ज्योतिष की पोथियों में अंकित था कि उसे अल्प आयु ही विधाता की ओर से प्राप्त हुई है। उसके विकास की गति भी एक आश्चर्य थी। पाँचवें वर्ष तक वैदुष्य उसे अलंकृत करने लगा। दसवें की आयु तक तो वह सेना सहित शत्रुओं पर अधिकार करने वाला हो गया। राजा ने उसे राजपाट भी सौंप दिया। विवाह की बात का तो ध्यान ही नहीं रहा। और अब प्रीतम कुँवर के जीवन के कुल ढाई दिन शेष रह गये। प्रीतम कुँवर ने माता-पिता को चिन्तित देखकर कारण पूछा तो उसे आसन्न मृत्यु का बोध हुआ। वह काशी मरने के लिए

चला। चन्द्रपुर में चित्ररेखा के विवाह का भव्य आयोजन था। प्रीतम कुँवर थका-थका-सा वहीं एक वटवृक्ष की छाया में सो गया। राजा सिंघदेव अपने कुबड़े पुत्र के साथ वहीं पहुँचा। उसे लगा कि यह अवश्य ही कोई राजपुत्र है। राजा उसे पंखा झलता रहा। प्रीतम कुँवर की आँख खुली तो वह काशी के लिए प्रस्तुत हुआ। राजा ने उसकी कहानी सुनी और अपना संकट बताते हुए अनुरोध किया कि वह उसके कुबड़े बेटे के बदले विवाह कर ले और फिर दूसरे दिन काशी चला जाय। हुआ यही। प्रीतम कुँवर सरीखे वर को देखकर सभी प्रसन्न हुए। वर-कन्या को महल के सातवें खण्ड में सुलाया गया। प्रीतम कुँवर चित्ररेखा की ओर पीठ करके सो गया। पिछले पहर चित्ररेखा को नींद आ गई। कुँवर ने उसके आँचल पर अपना कुल हाल लिख दिया—यह भी, कि दूसरे दिन काशी में उसकी मृत्यु होगी। वह इसके बाद घोड़े पर काशी के लिए चल पड़ा। भोर के समय चित्ररेखा की सखियों ने आकर देखा—सेज वैसी ही अछूती पड़ी थी। चित्ररेखा कुछ बता न सकी। उसने तो अपने प्रिय का चेहरा भी पूरी तरह न देखा था। उसकी दृष्टि तभी उस आँचल-लेख पर पड़ी। चित्ररेखा ने उन्हें बताया कि उसका पति मरने के लिए काशी गया है। उसने भी सखियों से चिता सजाने के लिए कहा। सिन्दूर माँग में धारण कर उसने निश्चय किया कि उसी आँचल-लेख को लिये दिये जल मरेगी। उधर प्रीतम कुँवर काशी में चिता सजाकर मरने की तैयारी करने लगा। उसने दान-पुण्य किये। दान लेने जो साधु-जन आये उनमें व्यासजी भी थे। प्रीतम कुँवर ने उन्हें भी श्रद्धापूर्वक दान दिया। उत्तर में वे कह गये—चिरंजीवी होओ। प्रीतम कुँवर ने कहा कि उसकी तो आयु पूरी हो चली है। व्यासजी ने कहा—जब मुँह से निकल ही गया, ऐसा ही होगा—अन्यथा नहीं होगा। उन्होंने संकेत किया कि इसके पीछे दैवी प्रेरणा है—उसकी आयु बढ़ा दी गई है। वह घर लौट आया। उसकी प्रसन्नता का अन्त न था। उसके ध्यान में सबसे पहले चित्ररेखा आई। वह तेज़ी से चला। चित्ररेखा जलने की तैयारी कर ही रही थी कि उसने प्रीतम कुँवर को आते देखा। वह प्रसन्नता और लज्जा से विभोर हो उठी और राजमहल के भीतर चली गई। दृश्य बदल गया। सर्वत्र आनन्द के बधावे बजने लगे :

दई जान उपराजा सोग माँह सुख भोग।
अवस तें मिलें विछोही, जिन्ह हिय होइ वियोग॥

इस साधारण कहानी में कहीं कुछ छूने वाली बात ज़रूर है। उसी मार्मिक स्थल में कविता है। जैसे आँचल-लेख का प्रसंग। पर दार्शनिक स्वभाव का विश्लेषण उसकी सम्भावनाओं को सीमित करता है। प्रायः कविता दार्शनिक वक्तव्य के परिचित सामान्यीकरणों से घिर जाती है। सूफ़ी मान्यता के अनुसार प्रेम-विरह

का महत्त्व-प्रतिपादन यहाँ भी है :

जब लगि विरह न होइ तन, हिये न उपजइ पेम ।
तब लगि हाथ न आव तप, करम धरम सत नेम ।।

प्रेम-कथा यहाँ केवल प्रेम कथा है। आध्यात्मिक व्याख्या उसमें घुलमिलकर सहज नहीं हो पाई है—अलग-अलग ही अपना अर्थ रखती है। कविता यहाँ भी धारणात्मक, अटपटी कविता ही है। लोकभाषा में व्यक्त अनुभव का अन्तःधर्म ऐन्द्रिक सघनता नहीं प्राप्त कर सका है।

जायसी की ये सभी रचनाएं दार्शनिक धारणाओं, सूत्रों, अनुभवों को केवल दुहराती हैं--इनमें बहुत कुछ मार्मिक कविता भी विचारों की एकरसता से दबी हुई है। इसीलिए जायसी के कवि-व्यक्तित्व की मार्मिक पहचान के लिए उनके पाठकों को 'पद्मावत' पर ही निर्भर करना पड़ता है। धारणाएँ वहाँ भी हैं पर कविता की अपना रागात्मक समृद्धि और भाषा की तद्भवता में जीवित लालित्य-धर्म को घटाकर नहीं।

जायसी का मूल्यांकन

जायसी एक ऐसे कवि हैं, जिनके बारे में हम यह कह कर न्याय नहीं कर सकते कि वे एक खास विचार या परिपाटी के कवि हैं या सूफी विश्वास ही उनके काव्य-सृजन की दिशा का निर्धारण करते हैं या प्रबन्ध-रचना की उनकी शैली बस मसनवी शैली ही है। ये सभी धारणाएँ किसी हद तक सच्चाई के निकट हो सकती हैं पर जिस अर्थ में कोई भी बड़ा कवि रूढ़ियों को बनाता और तोड़ता है, जायसी भी उन्हें निभाते और विचलित करते हैं। उनकी रचना-प्रक्रिया में यह गतिशीलता न होती, तो उनकी रचना की ताक़त बहुत कम होती। अपनी रूढ़ियाँ रचने वाले जायसी अपनी कविता की मुक्ति भी रचते हैं। वे दूसरे-तीसरे किनारे पर पड़ी हुई यादों को भी कविता के केन्द्र में लाते हैं और उन्हें पुनर्जीवन प्रदान करते हैं। एक भारतीय कवि-स्वभाव की उदारता, असंकीर्णता, एक प्रकार का समावेशी दृष्टिकोण, संग्रह और त्याग का एक रचनात्मक विवेक जायसी के यहाँ है। 'पद्मावत' में वे इन सबका सम्यक प्रमाण देते हैं—अन्यत्र भी जहाँ-तहाँ इन विशेषताओं का स्पर्श लक्ष्य किया जा सकता है। यह एक अलग बात है कि ये विशेषताएँ बहुत जगह इतने सहज स्वाभाविक रूप में उपलब्ध हैं कि उनसे सामना एक प्रीतिकर आत्मीय अनुभव बन जाता है और कई जगह इनसे परिचय के लिए कुछ धारणाओं-आरोपों की धुन्ध हटाने की आवश्यकता पड़ती है। जायसी की कृतियों का अर्थ भी इसी तर्क से अलग-अलग पाठकों तक जाकर बदल जाया करता है—वही नहीं रहता। जायसी की रचनाशीलता के उत्स को पकड़ना ही उनका सही मूल्यांकन हो सकता है।

प्रेम-सौन्दर्य संवेदना ही जायसी की सृजनशीलता का बीज-रहस्य है। उसे ही जायसी पर्त-दर-पर्त विभिन्न दिशाओं में ले जाते हैं और इस प्रकार अपनी रचना का एक संसार संगठित करते हैं जिसमें मांसलता भी है, देहातीत रहस्य का झलमलाता हुआ मायाजाल भी—विचारों में कविता भी है, कविता में विचार भी—चरित्रों के खरे विश्वसनीय सम्बन्ध भी हैं और उनका प्रतीकीकरण भी।

जायसी की कविता में वे स्थल भी हैं, जो ज्ञान प्रसार में ही भाव-प्रसार की सम्भावना दिखाते हैं और वे प्रसंग भी हैं, जिनमें हृदय के विस्तार की प्रेरणा देने वाली कविता भावप्रसार में ही ज्ञानप्रसार की सम्भावना की ओर इंगित करती है। 'पद्मावत' के मानसरोदक खण्ड के अन्तिम अंश को देखें—पारस रूप का संकेत ज्ञानात्मक संकेत है पर पहले वह पूरे प्रसंग के खेल-रहस्य की परिणति के रूप में भावमग्न करने वाला है। यह सौन्दर्य को भी 'रूप' देने वाला है :

पावा रूप रूप जस चहा। ससि मुख जनु दरपन होइ रहा ॥
नयन जो देखा कँवल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर ॥

रूप और प्रेम-संवेदना की यही विशिष्टता जायसी के कृतित्व की अपनी पहचान बन गई है। इसीके आधार पर सूफी साधकों और कवियों ने हिन्दुओं-मुसलमानों के बीच गहरी लोकप्रियता प्राप्त की। इस विरोधाभास पर सुखद आश्चर्य व्यक्त किया गया है कि "जब हिन्दुओं और मुसलमानों की लड़ाइयाँ आम बात थीं, किस प्रकार ऐसा मिलन सम्भव हो सका।" (हिन्दी साहित्य की भूमिका/हजारीप्रसाद द्विवेदी/पृ० ६३) मनुष्य-मनुष्य के बीच के रागात्मक सम्बन्ध को विकसित करने में इसी रूप और प्रेमसंवेदना की पहचान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जो वस्तुएँ सुन्दर हैं वे अकारण सुन्दर नहीं हैं। उनके आकर्षण का अर्थ सृष्टि का मार्मिक रहस्य है। जायसी का काव्य इस मर्म-सूत्र को पकड़ता है—जायसी के अनुसार यह वह सौन्दर्य है, जिसकी छाया से सारी दुनिया सुन्दर दिखाई देती है—यह वह सौन्दर्य है जिसे देख कर सरोवर में लहरें उठने लगती हैं—सरोवर इस चरम सौन्दर्य के समक्ष अधिक विनम्र होता है :

सरवर रूप बिमोहा हिये हिलोरहिं लेइ।
पाँव छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरहिं देइ ॥

जायसी जैसे सूफी विचारधारा वाले कवियों के काव्य में जिन लोक-प्रचलित प्रेम कहानियों का उपयोग किया गया है, वे मानवहृदय की एकता के तार को ठीक वहाँ झंकृत करती है जहाँ एक जन-आन्दोलन के दबाव में बाह्य मान्यताओं, विश्वासों के स्थूल भेद तिरोहित हो जाते हैं और गहरी एकता की माँग उभर कर सामने आती है।

यहाँ कुछ भ्रान्तियों से छुटकारा जरूरी है। मसनवी शैली के कवि के रूप में जायसी की प्रतिष्ठा प्रमाणित कर यदि हम यह कहना चाहें कि भारतीय प्रबन्ध-रचना के मुख्य प्रवाह में 'पद्मावत' की संगति नहीं बैठती तो यह बहुत कुछ हमारा भ्रम ही है। जायसी अपने कथ्य को मसनवी शैली में कहकर ही सन्तुष्ट हो गये

हों, ऐसा नहीं है। मसनवी से प्रभावित यह ढाँचा जायसी को परम्परा से मिला भी हो, पर काव्य में अपने अन्यतम रूप में उसका उपयोग एक नये आविष्कार का सुख दे सकता है। मसनवी और प्रेमाख्यानक काव्य को जो एक-दूसरे का पर्याय समझ लिया जाता है—उसके पीछे कोई प्रामाणिक तर्क नहीं है। जब अमीर खुसरो की मसनवियों से जायसी की मसनवी शैली वाली रचना की तुलना की जाएगी तो इस अन्तर का सही एहसास हो सकेगा।

बहुज्ञता के नाम पर जायसी के कवि-व्यक्तित्व के निकट बहुत-सी चीजें जमा हो गयी हैं जिन्हें काव्य रूढ़ि से अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। जायसी यदि कथानक रूढ़ियों का प्रयोग करते हैं, तो भारतीय कथा काव्यों की सुपरिचित परम्परा को स्वीकार करते हुए ही। इनके चयन के पीछे निजी हिकमत नहीं है। सिंहल यात्रा, गुणज्ञ पक्षी आदि कथानक रूढ़ियाँ इसी परिप्रेक्ष्य में समझी जाएँ तो कवि के साथ सही न्याय हो सकेगा। क्षेत्रीय भाषा-संवेदना वाली कहानियाँ पहले से इसी परम्परा से जुड़ती टकराती हैं। कुटनी की कथानक रूढ़ि भारतीय कथा-साहित्य की परम्परा की चीज़ है जिसे जायसी ने चुपके से उठा लिया है।

जायसी की कविता के अध्ययन-क्रम में पाठक के सामने एक समाज भी उभरता है—एक सांस्कृतिक परिदृश्य भी कल्पना में रूप लेता है। उसकी समग्र संगति धर्म या अध्यात्म से बिठा लेना जरूरी नहीं है। जो जीवन के प्रसंग हैं, वे अपनी स्वाभाविकता में भी उतने ही महत्वपूर्ण हृदयस्पर्शी हैं, जितने आध्यात्मिक चिन्ता के आलोक में दिखाई देते हैं। किसी पाठक को, आश्चर्य नहीं, उत्तर-पक्ष की तुलना में पूर्वपक्ष अधिक अर्थपूर्ण या प्रयोजनीय लगे। नागमती के सन्देश कथन की इस मार्मिकता को क्या किसी दूसरे अर्थ की आवश्यकता है :

पद्मावति सों कहेहु, विहंगम। कंत लोभाइ रही करि संगम॥
हमहुँ बियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर जीऊ॥
अबहुँ मया करु, करु निउ फेरा। मोहि जियाउ कंत देइ मोरा॥
मोहि भोग सौं काज न बारी। सौंह दीठि कै चाहनहारी॥

सपत्नी-सम्बन्ध की यह लौकिक साधारणता भी अपने ढंग की मार्मिक कविता है। पद्मावती रत्नसेन के जाने का समाचार पाती है। पिता का घर छूट रहा है। सखी-सहेलियाँ छूट रही हैं। मायके के खेल-कौतुक बिछुड़ रहे हैं। वहाँ जाना है—जहाँ से लौटना नहीं है। कुशल और व्यथा के सन्देश भी पता नहीं मिलेंगे या नहीं। प्रिय के साथ तो जाना ही है—पर क्या इतना सहज है यहाँ से जाना। सारे प्रतीक, संकेत, दूसरे-तीसरे अर्थ की व्यंजना और व्याप्ति अपने स्थान पर है, पर यहाँ इस अँधेरी घड़ी में लालसाओं का उमड़ना लौकिक अर्थ में भी जीवित है :

छाँड़िउँ नैहर, चलिउँ बिछोई। एहि रे दिवस कहँ हौं तब रोई॥
छाँडिउँ आपन सखी सहेली। दूरि गवन, तजि चलिउँ अकेली॥
सात समुद्र पार वह देसा। कित रे मिलन, कित आव सँदेसा॥
अगम पंथ परदेस सिधारी। न जनौं कुसल कि बिथा हमारी॥
हम तुम मिलि एकै संग खेला। अन्त बिछोह आनि गिउ मेला॥
कंत चलाई का करौं आयसु जाइ न मोटि।
पुन हम मिलहिँ कि ना मिलहिँ, लेहु सहेली भेंटि॥

बादल की नवपरिणीता पत्नी ने जब जान लिया कि युद्ध यात्रा के लिए प्रिय का संकल्प अटल है—उसका रूप और शृंगार उसे रोक नहीं सकता, उसने वह निर्णय लिया जो एक वीरपत्नी ही ले सकती है—'हे प्रिय तुमने युद्ध का साहस चुना है। मैं सती की नियति चुनती हूँ। हम जब ये चुनौतियाँ निभाएँगे—हमारा मिलन तभी होगा। जय पराजय दोनों स्थितियों में हम मिलेंगे—पर तभी—जब यह संकल्प पूरा होगा :

जौ तुम कंत! जूझ जिउ काँधा। तुम, पिउ! साहस, मैं सत बाँधा॥
रन संग्राम जूझि जिति आवहु। लाज होइ जौ पीठि देखावहु॥
तुम, पिउ! साहस बाँधा, मैं दिय माँग सँदूर।
दोउ सँभारे होइ सँग, बाजै मादर तूर॥

ये उदाहरण प्रमाण हैं कि जायसी के कृतित्व का सर्वोत्तम अंश लौकिक और अलौकिक के संगठन या तनाव में घटित हुआ है। विचारों की चमक भी कविता को कविता बनाती है पर जायसी के यहाँ कथा की स्वाभाविक चमक में ही कविता संभव हुई है। जहाँ केवल विचार हैं, जैसे आखिरी कलाम, अखराहट जैसी रचनाओं में—कविता केवल पद्यात्मक संगठन बनकर रह जाती है। इसलिए जायसी की पूरी पहचान उनके द्वारा रचे गए कथा-विधान में उनके हृदय और कौशल को जानने के क्रम में ही संभव है। लोक-संस्कृति-सम्बन्धी पूरी जानकारी का—(जो जानकारी से अधिक जायसी के व्यक्तित्व और स्वभाव का संस्कार है) उपयोग भी वहीं सम्भव हुआ है, जहाँ तक पूरी कहानी प्रबन्ध कविता के ढाँचे में कही गयी है। प्रेम वेदना के गूढ़ अनुभव को एक व्यापक आधार देने वाली कविता-धारा में जायसी का स्थान अनिवार्यतः सबसे ऊपर है।

परिशिष्ट : क

कविता का प्रामाणिक पाठ

पुरानी कविता के अर्थग्रहण और आस्वादन में एक कठिनाई पाठ की प्रामाणिकता अर्थात् कविता के मूल शब्द-रूप तक जाने की भी है और यद्यपि इस समस्या से वे ही टकराते हैं जो वैज्ञानिक पाठ के अनुसन्धान में संलग्न होते हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि कविता की अपनी पहचान में लगे हुए सहज पाठक के लिए यह कठिनाई नितान्त अप्रासंगिक सन्दर्भ है। जायसी की जिस महत्त्वपूर्ण प्रबन्धकृति 'पद्मावत' के आधार पर हम उनके कवि-स्वभाव से एक तरह की घनिष्ठ पहचान बनाने की कोशिश करते हैं, उसी का सही पाठ कई बार केवल समस्या बनकर रह जाता है। पर साथ ही, जिस पाठ-रूप से समस्या सुलझती है या सुलझती दिखाई देती है, वही कविता के आस्वादन के सुख को कई अर्थों में बढ़ा देता है।

शाही दरबारों से साधारण जन तक 'पद्मावत' की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त होती रही हैं। उन पर इसलिए निर्भर होना पड़ा है कि जायसी के हाथ की लिखी कोई प्रति नहीं है, न उनकी देख-रेख में लिखी गयी या उनके द्वारा संशोधित-प्रमाणित कोई समकालीन प्रति ही प्राप्त है। यह बात अचरज में डालती है कि अर्थ की गम्भीरता की दृष्टि से जिसे 'वज्रमयी क्लिष्टता का काव्य' (वासुदेवशरण अग्रवाल) कहा गया हो वह इस हद तक लोकप्रिय या लोकग्राह्य हो कि साहित्य की दुनिया से दूर का पाठक 'पद्मावत' की हस्तलिखित प्रति अपनी अमगढ़ कला से अलंकृत कर अपने अधिकारी को भेंट करे। 'पद्मावत' की लोकप्रियता प्रमाणित करने वाले इस प्रकार के उदाहरण भी देखने-सुनने में आये हैं। अब 'पद्मावत' के पाठ-निर्धारण में लगे हुए विद्वानों के हाथ प्रायः ऐसे ही हस्तलेख आये हैं जो प्रतिलिपियों की प्रतिलिपियाँ हैं। इसलिए सही पाठ और सही अर्थ तक पहुँचने के जो प्रयास हुए हैं उनके कुछ उदाहरण सामने रखकर हम जायसी के अपने शब्द तक जा सके हैं या इस समस्या को ही ठीक-ठीक देख सकते हैं कि समय ने मूल कविता और कविता के उपलब्ध रूप के बीच कैसी दूरी बनाई है। फारसी लिपि में लिखी गई अवधी भाषा की इस महत्त्वपूर्ण कृति के सही पाठ

की विडम्बना इकहरी या एक स्तरीय नहीं है। जायसी अवधी के ठेठ शब्द को लोकसंस्कृति की जड़ों से और जीवित सम्पर्क से प्राप्त करते हैं। लिखावट के भ्रम से कई बार ऐसे जीवित रूपों की पहचान में बाधा पड़ी है।

यहाँ कुछ पाठ-भेद-रूपों के उदाहरण दिए जा सकते हैं। इससे जायसी की कविता के सहज-सजग पाठकों को यह जाँचने में दिलचस्पी हो सकती है कि उनका प्रिय कवि किस पाठ में अधिक पहचाना जा रहा है। रामचन्द्र शुक्ल, माताप्रसाद गुप्त और वासुदेव शरण अग्रवाल ने जो पाठ-रूप दिए हैं उन्हें तुलनात्मक स्थिति में रखकर शायद वास्तविक पाठ की कल्पना की जा सकती है। इधर भगवती प्रसाद सिंह के पास सुरक्षित मुगल सम्राट मुहम्मद शाह 'रंगीले' के दरबार से तैयार की गई 'पद्मावत' की एक संक्षिप्त पर दुर्लभ सचित्र प्रति देखने का अवसर मिला है जिसके पाठ-रूप को उपर्युक्त तुलनात्मक पाठ-रूपों की समानान्तरता में रखा जा सकता है :

(क) **'मानसरोदक खण्ड' से /**

खेलत मानसरोवर गईं। जाइ पाल पर ठाढ़ी भईं॥
देखि सरोवर **हँसै कुलेली**। पद्मावति सौं कहहिं सहेली॥
(रामचन्द्र शुक्ल)

खेलत मानसरोवर गईं। जाइ पालि पर ठाढ़ी भईं॥
देखि सरोवर **रहसहिं केली**। पदुमावति सौं कहहिं सहेली॥
(वासुदेवशरण अग्रवाल, माताप्रसाद गुप्त)

(ख) **'वसंत खंड से /**

निसि सूती कहि कथा **बिहारी**। भा बिहान कह सखी हँकारी॥
(रामचंद्र शुक्ल, माताप्रसाद गुप्त)

निसि सूती कहि कथा **पहारी**। भा बिहान कह सखी हँकारी॥
(भगवतीप्रसाद सिंह)

(ग) **'पद्मायती रत्नसेन भेंट खंड' से /**

अनु, धनि तू **निसिअर** निसि माहाँ। हौं दिनिअर जेहि कँ तू छाहाँ॥
× × ×
अस मैं प्रीति गाँठि हिय जोरी। कटै न काटै छुटै न छोरी॥
(रामचंद्र शुक्ल)

अनु धनि तूं ससिअर निसि माहाँ। हौं दिनअर तेहि की तूं छाहाँ॥
× × ×

तुम्ह सौं प्रीति गांठ हौं जोरी। कटै न काटै, छुटै न छोरी॥
(वासुदेवशरण अग्रवाल, माताप्रसाद गुप्त)

विनय करै पद्मावति बाला। **सुधि न सुराही, पियउ पियाला॥**
(रामचंद्रशुक्ल)

विनति करै पदुमावति बाला। **सो धनि सुराही पीउ पियाला॥**
(माताप्रसाद गुप्त)

बिनति करै पदुमावति बाला। **सो धनि सुराही औ पिउ प्याला॥**
(भगवतीप्रसाद सिंह)

(घ) **'नागमती संदेश खंड' से /**

हाड़ भए **सब** किंगरी नसैं भईं सब **तांति**।
रोवँ रोवँ **ते** धुनि उठै **कहौं बिथा केहि** भाँति॥
(रामचंद्रशुक्ल)

हाड़ भए **भुरि** किंगरी नसैं भईं सब **तांति**।
रोवँ रोवँ **तन** धुनि उटै **कहेसु बिथा केहि** भाँति॥
(वासुदेवशरण अग्रवाल)

हाड़ भए **भुरि** किंगरी नसैं भईं सब **तार**।
रोम-रोम तें धुनि उठै, **बाजै नाँव तुम्हार**॥
(भगवतीप्रसादसिंह)

(ङ) **'लक्ष्मी समुद्र खंड' से /**

जेहि सिर **परा** बिछोहा, देहुँ ओहि सिर आगि।
लोग कहैं यह सिर चढ़ी, **हौं सो जरौं** पिउ लागि॥
(रामचंद्र शुक्ल)

जेहि सर **मारि** बिछोहि गा देहि ओहि सिर आगि।
लोग कहैं यह सर चढ़ी हौं **सौं चढ़ौं** पिय लागि॥
(वासुदेवशरण अग्रवाल)

(च) **'पद्मावती-रूप चर्चा खंड' से /**

जौ वह **पदमिनि** मानसर अलि न मलिन होइ जात।
चितउर महँ जो पदमिनि फेरि उहै कहु बात॥
(रामचंद्र शुक्ल)

जौ यह **मालति** मानसर **अलि न बेलंबै** जात।
चितउर महँ जो पदमिनी फेरि वहै कहु बात॥
(वासुदेवशरण अग्रवाल)

(छ) 'उपसंहार' से /

केइँ न जगत **जस** बेचा केइँ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी हम सँवरै दुइ बोल॥
(वासुदेवशरण अग्रवाल, रामचंद्र शुक्ल)

केइ न जगत **सत** बेचा, केइ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़े कहानी हम्ह सँवरै दुइ बोल॥
(भगवतीप्रसाद सिंह)

पाठ-भेद के ऐसे कुछ उदाहरणों को देखने से अनुमान किया जा सकता है कि कहीं तो पाठ-भेद के पीछे शुद्ध लिपिजन्य भ्रांति है और कहीं प्रतिलिपिकारों ने विशिष्ट काव्यात्मक व्यंजना के लोभ से भी पाठ में रूप-परिवर्तन कर लिया है। 'नागमती संदेश खंड' वाले उदाहरण में (भगवतीप्रसादसिंह के पास सुरक्षित मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार की सचित्र प्रति के पाठ में) काव्यात्मक व्यंजना का लोभ स्पष्ट है। 'रोवँ रोवँ ते धुनि उठैं कहौं बिथा केहि भाँति' / 'रोम रोम तें धुनि उठै बाजै नाँव तुम्हार'—इस दूसरी कल्पना (रोएँ रोएँ से जो ध्वनि उठ रही है इसमें तुम्हारा नाम बज रहा है) का कुछ अलग ही सौन्दर्य है। एक सहृदय पाठक इस कल्पना सौन्दर्य की सराहना तो कर सकता है पर इससे कविता के मूल शब्द, कवि के निजी शब्द की समस्या तो हल नहीं हो जाती। कहीं पाठ-भेद है पर अर्थभेद नहीं है—यहाँ शब्द के मूल रूप की चिन्ता ही महत्त्व रखती है। जैसे 'राघव चेतन देस निकाला खंड' से ली गई पंक्ति (कंकन एक कर काढ़ि **पवारा**/ कंगन काढ़ि सो एक **अडारा**) में 'पवारा' 'अडारा' दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है—'फेंका'। अब यों तो उपसंहार की प्रामाणिकता में ही सन्देह किया गया है पर 'उपसंहार' से चुने गये उदाहरण में 'जस' और 'सत' के अन्तर के पीछे जायसी की पूरी रचनात्मक समझ की ही व्याख्या की गयी है। 'सत' के पक्ष में जायसी की अन्य बहुत-सी पंक्तियों का साक्ष्य देकर इस शब्द की अपने स्थान पर काव्यात्मक सार्थकता प्रमाणित की गई है :

सत औ धरम देउ सब तोहीं। पिय की बात कही जेहि मोहीं॥

× × ×

तब मैं ज्ञान कीन्ह **सत** बाँधा । ओहि कै बोल लाग **बिष** साँधा ।।

× × ×

साँचि संग्राम बाँधि **सत** साका । तजि कै जिवन मरन सब ताका ।।

जिस कृति को लोक ने स्वीकार कर लिया हो उसमें नये स्पर्श जुड़ते रहने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है । फिर भी पाठान्तरों के आलोक में कवि के मूल शब्द तक जाने के प्रयास का अपना महत्त्व कम नहीं है । इस प्रयास के क्रम में यह देखने की चिन्ता भी बनी हुई कि जायसी की सांस्कृतिक सृजन-शीलता भाषा के क्षेत्रीय स्पर्शों में कितनी जीवित हो उठी है ।

परिशिष्ट : ख

संदर्भ-सूची

पदमावती : सर जार्ज ग्रियर्सन तथा महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी।
पदमावती : ए० जी० शिरेफ
जायसी ग्रन्थावली : (पदमावत, अखरावट, आखिरी कलाम) : रामचन्द्र शुक्ल
पदमावत : (मूल और संजीवनी व्याख्या) : वासुदेवशरण अग्रवाल
जायसी ग्रन्थावली : (पदमावत, अखरावट, आखिरी कलाम और महरी बाईसी) : माताप्रसाद गुप्त
चित्ररेखा : (सं०) शिवसहाय पाठक
कहरानामा और मसलानामा : (सं०) अमरबहादुरसिंह 'अमरेश'
सूफी काव्य संग्रह : परशुराम चतुर्वेदी
तसव्वुफ और सूफीमत : घन्द्रवली पाण्डेय
मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : श्याममनोहर पाण्डेय
जायसी : रामपूजन तिवारी
जायसी और उनका काव्य : शिवसहाय पाठक
The Way of Sufi : Idries Shah

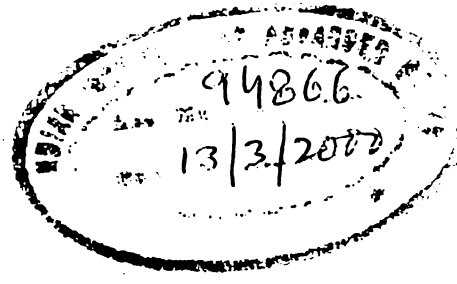

मलिक मुहम्मद जायसी मध्यकालीन भक्ति-साहित्य की प्रेमाख्यानक काव्यधारा के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जिन्होंने धार्मिक संवेदना और धर्मनिरपेक्ष संवेदना को एक मार्मिक संतुलन में ढालते हुए लोकभाषा अवधी में 'पद्मावत' जैसी कालजयी प्रबन्ध-कृति की रचना की और हिन्दी-कविता को एक नई वैचारिक और भावात्मक जमीन दी।

'पद्मावत' प्रेम कहानी नहीं है, प्रेम और संघर्ष की मिली-जुली कहानी है—जो प्रमाण है कि जायसी में सभी पात्रों के मर्म में प्रवेश करने की अद्भुत क्षमता है। उनकी सांस्कृतिक अवगति और संस्कृतियों की मूलभूत एकता को पहचानने वाली दृष्टि उदाहरण है कि मानवीय संवेदना की बड़ी पूंजी लेकर जायसी रचना के संसार में प्रवेश करते हैं। उनके वर्णों इतिहास की टकराहटें भी हैं और मानवीय सहानुभूति का कोमल स्पर्श भी है।

परमानन्द श्रीवास्तव नई पीढ़ी के आलोचकों में अपनी रचनात्मक दृष्टि के कारण महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं। उन्होंने भारतीय साहित्य के पाठकों को जायसी से परिचित कराते हुए कोशिश की है कि कवि के व्यक्तित्व, विचार, सौन्दर्य-संवेदना, कलात्मक संगठन आदि के प्रति उनकी उत्सुकता बढ़े और वे भी सोच सकें कि क्यों 'पद्मावत' जैसी कृतियाँ हर दौर में नई प्रासंगिकता उपलब्ध करती हैं।

ISBN 81-7201-401-5

मूल्य : पन्द्रह रुपये

Library IIAS, Shimla
H 811.24 J 334 S
00094866